प्रधान सम्पादक

डॉ० सागरमल जैन

सहसम्पादक डॉ० शिवप्रसाद

---

१ अर्हत् पार्श्व और उनकी परम्परा

२ आओ बैठें करें विचार

गी है, उसके पश्चात् ऋषभ, पार्श्व और अरिष्टनेमि की प्रतिमाओ का क्रम आता है। ऐसा लगता है कि इस काल तक ये ही चार तीर्थंकर प्रमुख रूप से मान्य थे और इन्ही के सम्बन्ध मे साहित्यिक विवरण भी लिखे गये थे। कल्पसूत्र भी केवल इन्ही चारो तीर्थङ्करो के सम्बन्ध मे सविस्तार विवरण प्रस्तुत करता है। इस काल के साहित्यिक एव पुरातात्त्विक साक्ष्यो मे अन्य तीर्थंकरो सम्बन्धी विवरणो का अभाव विचारणीय है।

पार्श्व सम्बन्धी इन विवरणो से पार्श्व की ऐतिहासिकता एव जैन परम्परा मे उनका महत्व स्पष्ट हो जाता है। पार्श्व के सम्बन्ध मे ई० पू० के अभिलेखीय साक्ष्यो के अभाव से उनकी ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिह्न नही लगाया जा सकता है, क्योकि बुद्ध और महावीर के सम्बन्ध मे भी एकाध अपवाद को छोडकर ई० पू० के अभिलेखीय साक्ष्यो का अभाव है। महावीर के सम्बन्ध मे एक अभिलेख उनके निर्वाण के ८४ वर्ष पश्चात् का वाल्टी, राजस्थान से प्राप्त है। मौर्यकालीन अशोक के अभिलेखो मे केवल एक स्थान पर ही बुद्ध का नामोल्लेख हुआ है।

आज पार्श्व की ऐतिहासिकता के निर्धारण का आधार मात्र साहित्यिक साक्ष्य ही है। दुर्भाग्य से जैन परम्परा के आगमिक ग्रन्थो के अतिरिक्त हमे बौद्ध और वैदिक परम्परा के ग्रन्थो मे भी पार्श्व के नाम का स्पष्ट रूप से कोई उल्लेख नही मिलता है। प० कैलाशचन्द जी ने लिखा है कि पार्श्व का उल्लेख बौधायन धर्मसूत्र के पूर्व हुए है[2] किन्तु उन्होने उसका कोई प्रमाण नही दिया है। खोज करने पर हमे बौधायन धर्म सूत्र मे 'पारशव' शब्द मिला है किन्तु उसमे वर्णसकरो के प्रसङ्ग मे ही पारशवो की चर्चा है।[3] वहा पारशव का तात्पर्य भिन्न वर्णो के स्त्री-पुरुषो के सम्पर्क से उत्पन्न सन्ताने है।

'पारशव' शब्द का अर्थ पारसी या फारस देश के निवासियो और भारतीयो के सम्पर्क से उत्पन्न सन्तान भी किया जा सकता है। फिर भी इस सम्भावना को पूर्णतया निरस्त नही किया जा सकता कि पारशवो का सम्बन्ध पार्श्व के अनुयायी से रहा हो। क्योकि वैदिक ब्राह्मण श्रमणो को और उनके अनुयायियो को हेय दृष्टि से देखते थे। श्रमणो के अनुयायियो को वर्णसकर कहने का एक कारण यह होगा कि

श्रमण धारा वर्ण व्यवस्था के सन्दर्भ मे बहुत कठोर नही थी । उसमे अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्ध होते होगे, फलत उन्हे वर्ण सकरो की श्रेणी मे रखा जाता होगा । फिर भी यह एक क्लिष्ट कल्पना ही है, इसे निर्विवाद तथ्य नही कहा जा सकता है ।

पार्श्व के सम्बन्ध मे स्पष्ट रूप से जो प्राचीनतम साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध है, वह जैन आगम ऋषिभाषित का है। ऋषिभाषित जैन परम्परा के आगम ग्रन्थो मे आचाराग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के पश्चात् का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ है । मेरी दृष्टि मे इसका सम्भावित रचनाकाल ई० पू० चौथी शताब्दी है। एक स्वतन्त्र लेख मे मैने इस बात को अनेक प्रमाणो के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास भी किया है। यह ग्रन्थ सम्पूर्ण पालि त्रिपिटक और आचाराग के प्रथम श्रुतस्कन्ध को छोडकर सम्पूर्ण जैन आगम साहित्य मे प्राचीन है। उसकी भाषा-शैली, छन्द योजना तथा साम्प्रदायिक सकीर्णता से रहित उदार-दृष्टि ऐसे तथ्य है जो उसकी प्राचीनता को निर्विवाद रूप से सिद्ध करते है।[4] ऋषिभाषित मे महावीर और बुद्ध के पूर्ववर्ती तथा समकालीन ४४ ऋषियो के नामोल्लेख पूर्वक उपदेश सकलित हैं। इनमे ब्राह्मण परम्परा के देव-नारद, असितदेवल, याज्ञवल्क्य, भारद्वाज, उद्दालक, आरुणि आदि के, बौद्ध परम्परा के सारिपुत्र, महाकाश्यप एव वज्जियपुत्त के, अन्य स्वतन्त्र श्रमण परम्परा के ऋषियो मे मक्खलि गोसाल आदि के तथा जैनपरम्परा पार्श्व एव वर्धमान के उपदेश भी सकलित है। ऋषिभाषित के ऋषियो मे सोम, यम, वरुण और वैश्रमण (कुबेर) इन चार लोकपालो को छोडकर लगभग सभी ऋषि ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं। अत पार्श्व की ऐतिहासिकता मे भी हमे कोई सन्देह नही रहता है।

ऋषिभाषित के पार्श्व नामक इस अध्ययन की एक विशेषता यह भी है कि उसमे इस अध्याय का एक पाठान्तर भी दिया हुआ है जिसमे यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'गति व्याकरण' नामक ग्रन्थ मे इस अध्याय का दूसरा पाठ पाया जाता है।[5] इससे इस अध्याय की विषयवस्तु तथा उससे सम्बन्धित व्यक्ति की ऐतिहासिकता की पुष्टि होती है। हमने एक स्वतन्त्र लेख मे इस बात को भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि ऋषिभाषित किसी भी स्थिति मे ईसापूर्व

चतुर्थ शताब्दी के बाद का ग्रन्थ नही है। अत इस ग्रन्थ का पार्श्व नामक अध्ययन पार्श्व के सम्बन्ध मे प्राचीनतम साहित्यिक साक्ष्य के रूप मे मान्य किया जा सकता है। ऋषिभाषित से परवर्ती जैन ग्रन्थो मे सूत्रकृताग, आचाराग (द्वितीय श्रुतस्कन्ध), उत्तराध्ययन, भगवती, कल्पसूत्र, निरयावलिका, आवश्यक निर्युक्ति आदि मे भी पार्श्व एव पार्श्वापत्यो सम्बन्धी स्पष्ट उल्लेख है। कल्पसूत्र के अतिरिक्त इन सभी ग्रन्थो मे पार्श्व के सिद्धान्तो के साथ-साथ पार्श्व के अनुयायी श्रमण-श्रमणियो और गृहस्थ उपासक-उपासिकाओ के उल्लेख है। कल्पसूत्र और समवायाग मे पार्श्व के परिजनो का एव जीवनवृत्त का भी सक्षिप्त उल्लेख है। अत इन ग्रन्थो को भी पार्श्व की ऐतिहासिकता को प्रामाणित करने का एक महत्त्वपूर्ण आधार माना जा सकता है।[6]

आचाराग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे महावीर के माता-पिता को स्पष्ट रूप से पार्श्व का अनुयायी बताया गया है।[7] यह बात निर्विवाद रूप से स्वीकार की जा सकती है कि महावीर के पूर्वोत्तर भारत मे पार्श्व का प्रभाव था और उनके अनुयायी इस क्षेत्र मे फैले हुए थे। इस तथ्य की पुष्टि पालि त्रिपिटक साहित्य से भी होती है। बुद्ध के चाचा वप्पसाक्य को निर्ग्रन्थो का उपासक कहा गया है।[8] प्रश्न यह होता है कि ये निर्ग्रन्थ कौन थे ? ये महावीर के अनुयायी तो इस लिये नहीं हो सकते कि महावीर बुद्ध के समसामयिक है। बुद्ध के चाचा का निर्ग्रन्थो का अनुयायी होना इस बात को सिद्ध करता है कि बुद्ध और महावीर के पूर्व निर्ग्रन्थो की कोई एक परम्परा थी और यह परम्परा पार्श्वापत्यो की ही हो सकती है। पार्श्वनाथ की परम्परा की प्राचीनता का एक और प्रमाण पालि त्रिपिटक साहित्य मे यह है कि सच्चक का पिता निर्ग्रन्थ श्रावक था। सच्चक ने यह भी गर्वोक्ति की थी कि मैंने महावीर को परास्त किया। अत सच्चक और महावीर समकालीन सिद्ध होते है।[8A] सच्चक के पिता का निर्ग्रन्थ श्रावक होना इस बात का सूचक है कि महावीर के पूर्व भी कोई निर्ग्रन्थ परम्परा थी और सच्चक पिता का उसी निर्ग्रन्थ परम्परा का श्रावक था। पालि त्रिपिटक मे निर्ग्रन्थो को एक साटक कहा गया है।[9] चाहे आचाराग के अनुसार

महावीर ने अपने प्रव्रज्या के समय एक वस्त्र ग्रहण किया था।[10] किन्तु यदि हम उनके वस्त्र-सम्बन्धी इस उल्लेख को प्रामाणिक मानें तो भी इतना स्पष्ट है कि वे अपनी प्रव्रज्या के एक वर्ष के पश्चात् नग्न या अचेल हो गये थे और उन्होने मुख्य रूप से अचेल धर्म का ही प्रतिपादन किया था।[11]

यह भी सत्य है कि महावीर की परम्परा मे जो सचेलता सम्बन्धी अपवाद प्रविष्ट हुए वे पार्श्वापत्यो के प्रभाव के कारण हुए। यह भी हो सकता है कि प्रथम पार्श्वापत्यो की परम्परा का अनुसरण करके महावीर ने दीक्षा के समय एक वस्त्र ग्रहण किया हो। बाद मे आजीवक परम्परा के अनुरूप अचेलता को स्वीकार कर लिया हो। जेकोबी ने The Sacred Books of the East, Vol XLV मे ऐसी सम्भावना व्यक्त की है।[12] उत्तराध्ययन मे स्पष्ट रूप से महावीर को अचेल धर्म का प्रतिपादक और पार्श्व को सचेलक धर्म का प्रतिपादक कहा गया है।[13] इन सब आधारो पर ऐसा लगता है कि पालि त्रिपिटक मे बुद्ध के चाचा बप्पमाक्य तथा सच्चक के पिता के निर्ग्रन्थो के अनुयायी होने के तथा निर्ग्रंथो के एक साटक होने के जो उल्लेख हैं, वे महावीर की परम्परा की अपेक्षा पार्श्व की परम्परा से ही अधिक सम्बन्धित जान पडते हैं। बौद्धो को महावीर और पार्श्व की परम्परा का अन्तर स्पष्ट नही था, अत उन्होने पार्श्व की परम्परा की अनेक बातो को महावीर की परम्परा के साथ जोड दिया। उदाहरण के रूप मे पालित्रिपिटक मे महावीर को चातुर्याम का प्रतिपादक कहा गया है।[14] जबकि वास्तविकता यह है कि महावीर नही, पार्श्व ही चातुर्याम के प्रतिपादक है। सूत्रकृताग, उत्तराध्ययन, भगवती एव अन्य आगम ग्रन्थो मे पार्श्व को चातुर्याम धर्म का और महावीर को पञ्चमहाव्रत तथा सप्रतिक्रमण धर्म का प्रतिपादक कहा गया है।[15] इससे ऐसा लगता है कि बौद्ध परम्परा मे निर्ग्रन्थो का जो उल्लेख है वह पार्श्वनाथ की परम्परा से सम्बन्धित है। सूत्रकृताग,[16] भगवती,[17] औपपातिक,[18] राजप्रश्नीय,[19] निरयावलिका[20] आदि आगम ग्रन्थो मे पाये जाने वाले पार्श्वापत्यो के उल्लेख इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि महावीर के समय के पार्श्वापत्यो का पूर्वोत्तर भारत मे व्यापक प्रभाव था।

इसी प्रकार कोलब्रुक,[26] स्टीवेन्सन,[27] एडवर्ड टामस,[28] गेरी नाट,[29] इलियट,[30] पुसिन,[31] डा० बेलवलकर,[32] डा० दासगुप्ता,[33] डा० राधाकृष्णन्,[34] एव मजुमदार[35] ने पार्श्वनाथ को महावीर के पूर्ववर्ती निर्ग्रन्थ परम्परा का नायक माना है और इस प्रकार उनकी ऐतिहासिकता को स्वीकार किया है।

**जैन परम्परा मे पार्श्वनाथ का स्थान**

सामान्य जैनो मे आज भी पार्श्वनाथ के प्रति जो आस्था देखी जाती है वह अन्य किसी तीर्थंकर के प्रति नही देखी जाती है। चरम तीर्थंकर स्वय महावीर के प्रति भी उतनी आस्था नही है, जितनी पार्श्व के प्रति है। यद्यपि सिद्धान्तत यह माना जाता है कि सभी तीर्थंकर समान हैं, फिर भी जिस तीर्थंकर का शासन होता है उसकी उस काल मे विशेष प्रतिष्ठा रहती है, किन्तु आज जैन परम्परा मे विशेष रूप से जैन उपासको के हृदय मे पार्श्वनाथ के प्रति जितनी अधिक श्रद्धा और आस्था है, उतनी महावीर के प्रति भी नही देखी जाती है। यदि हम जैन तीर्थों और तीर्थकर-प्रतिमाओ का ही एक सर्वेक्षण करें तो हमे स्पष्ट रूप से यह ज्ञात हो जायेगा कि देश मे आज भी सर्वाधिक तीर्थ और सर्वाधिक प्रतिमायें भी पार्श्वनाथ की हैं। शखेश्वर पार्श्वनाथ, गौडी पार्श्वनाथ, चिन्तामणि पार्श्वनाथ, अमीझरा पार्श्वनाथ, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ, अवन्तिका पार्श्वनाथ, मक्षी पार्श्वनाथ आदि को जैन उपासक आज भी अत्यन्त श्रद्धा के साथ पूजता है।

स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि आखिर महावीर की अपेक्षा पार्श्वनाथ की जैन परम्परा मे इतनी अधिक प्रतिष्ठा क्यो है? इस प्रश्न का सैद्धान्तिक उत्तर तो यह दिया जाना है कि सभी तीर्थंकर, तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन करके तीर्थंकर पद को प्राप्त करते हैं, किन्तु सभी तीर्थंकरो का तीर्थकर-नाम-कर्म समान नही होता, किसी का तीर्थंकर नाम-कर्म विशिष्ट होता है और इसी कारण वह तीर्थंकर सघ मे विशिष्ट रूप से पूजा और प्रतिष्ठा पाता है। परम्परागत मान्यता के अनुसार पार्श्वनाथ का तीर्थंकर नामकर्म अन्य तीर्थंकरो की अपेक्षा विशिष्ट था और इसीलिए उनकी पूजा और प्रतिष्ठा अधिक है।

इस प्रश्न का दूसरा सामान्य उत्तर यह भी हो सकता है कि चूंकि महावीर स्वय पार्श्व को पुरुषादानीय, पुरुषश्रेष्ठ कहकर विशेष प्रतिष्ठा देते थे। अत उनका उपासक वर्ग भी उनकी अपेक्षा पार्श्वनाथ को अधिक प्रतिष्ठा देता है। आचार्य हस्तीमल जी ने अपने ग्रन्थ जैनधर्म का मौलिक इतिहास भाग १, जो वस्तुत इतिहास ग्रन्थ की अपेक्षा स्थानकवासी परम्परा की दृष्टि मे लिखा गया पुराण ही है मे पार्श्व की विशेष प्रतिष्ठा का कारण यह बताया है कि आज देव मण्डल मे अनेक देव और देवियाँ पार्श्व के शासन मे देव योनि को प्राप्त हुए है, अत उनके शासन की प्रभावना अधिक होने से वे अधिक पूज्य है।[36] कुछ लोगो का यह भी कहना है कि पार्श्व के यक्ष और यक्षी—धरणेन्द्र और पद्मावती पार्श्व के उपासको पर शीघ्र कृपा करते है और उनकी मनोवाछित कामनाओ को पूरा करते है अत जैन सघ मे पार्श्व की प्रतिष्ठा अधिक है यद्यपि सिद्धान्तत ये उत्तर अपनी जगह ठीक भी हो, किन्तु मेरी दृष्टि मे जैनसघ मे पार्श्वनाथ की विशेष प्रतिष्ठा के पीछे मूलभूत कारण कुछ दूसरा ही है और वह मुख्यत व्यावहारिक है।

जैन परम्परा मे पार्श्व को विघ्नो का उपशमन करने वाला माना गया है। पार्श्वनाथ को वही स्थान प्राप्त है जो कि आज हिन्दू परम्परा के देवो मे विनायक या गणेश को है। हिन्दू परम्परा मे गणेश को विघ्ननाशक देवता के रूप मे स्वीकार किया जाता है और हम देखते है कि हिन्दू परम्परा के प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान मे सर्वप्रथम विनायक का आह्वान और स्थापना की जाती है ताकि वह अनुष्ठान निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हो। चूँकि जैन परपरा मे भी पार्श्वनाथ को विघ्न-शामक तीर्थंकर के रूप मे स्वीकार किया गया है और इसलिए उनकी विशेष प्रतिष्ठा है। यदि हम जैन स्तोत्र साहित्य और भक्ति साहित्य को देखे तो भी यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि जितने स्तोत्र पार्श्व के लिए निर्मित हुए उतने अन्य किसी भी तीर्थंकर के लिए नही। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि पार्श्व सम्बन्धी लगभग सभी स्तोत्रो या स्तुतियो मे कही न कही उनसे विघ्न के उपशमन की अथवा लौकिक मगल और कल्याण की अपेक्षा की गयी है। यद्यपि जैन धर्म सिद्धान्तत अध्यात्म और तप-त्याग की

बात अधिक करता है, किन्तु यह सत्य है कि सभी मनुष्यो मे कही न कही भौतिक सुख-सुविधाओ और लौकिक मगल की आकाक्षा पाई जाती है और जब यह धारणा दृढमूल हो जाती है कि भौतिक मगल और भौतिक ऐषणाओ की प्राप्ति अमुक देव के द्वारा विशेष रूप से होती है, तो स्वाभाविक रूप से वही देव मुख्य रूप से उपासक की आस्था का केन्द्र बन जाता है। जैन परम्परा मे पार्श्वनाथ के साथ भी यही हुआ है। जैन स्तोत्र साहित्य मे सबसे प्राचीन स्तोत्र 'उवसग्गहर' माना जाता है। यह स्तोत्र पार्श्वनाथ की स्तुति के रूप मे ही निर्मित हुआ है। इसमे उन्हे मगल और कल्याण का आवास, विष-पीडाओ और विघ्न-बाधाओ का उपशमन करने वाला माना गया है और उनसे यह प्रार्थना की गयी है कि वे उपासक के सभी विघ्नो का उपशमन करे।[37]

यद्यपि यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उपस्थित होता है कि जैन दर्शन के अनुसार पार्श्वनाथ तो वीतराग है, वे अपने भक्तो के विघ्नो के उपशमन तथा उसके मगल और कल्याण के कर्ता किस प्रकार हो सकते है ? जैनो ने इस दार्शनिक समस्या के समाधान का एक मार्ग प्रस्तुत किया है, उनकी मान्यता है कि यद्यपि तीर्थंकर वीतराग होने के कारण न तो अपने भक्तो का कल्याण करता है और न उन भक्तो को पीडा देने वाले को दण्डित ही करता है, किन्तु तीर्थंकर के जो यक्ष-यक्षी या भक्त देवता होते है वे ही उन तीर्थंकरो के उपासक भक्तो के विघ्नो का उपशमन करते है और उनका हित साधन या कल्याण करते है। पार्श्वनाथ के यक्ष-यक्षिणियो मे धरणेन्द्र और पद्मावती का उल्लेख आता है। धरणेन्द्र को पार्श्व-यक्ष के रूप मे भी माना जाता है।[38] यहाँ यह भी स्मरणीय है कि पार्श्व ही एक ऐसे तीर्थंकर हैं जिनके यक्ष को भी वही नाम दिया गया है। एक और मनोरजक तथ्य यह भी है कि जैन परपरा मे पार्श्व यक्ष की जो प्रतिमाये निर्मित होती हैं वे ठीक गणेश की प्रतिमाओ के समान ही हस्तिशीर्ष (गजशीर्ष) से युक्त होती हैं।[39] गणेश और पार्श्व यक्ष की प्रतिमाओ मे वाहन के अन्तर को छोडकर पूर्णतया समानता देखी जाती है। यह भी सत्य है कि जैनधर्म मे अनेक यक्ष-यक्षिणियो, विद्यादेवियो और शासन देवियो की मूर्तियो के लक्षणो को

हिन्दू परपरा से ही ग्रहण किया गया है। जैन परम्परा मे चक्रेश्वरी, अम्बिका, सिद्धायिक गैरोट्या आदि जिन देवियो की प्रतिष्ठा है, उनमे पार्श्व की यक्षिणी पद्मावती को ही सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। अनेकानेक जैन मन्दिरो मे आपको पद्मावती की प्रतिमाएँ उपलब्ध होती है। हिन्दू परम्परा मे जो स्थान दुर्गा का और बौद्ध परपरा मे तारा का है वही जैन परपरा मे पद्मावती का है। आज भी अनेक जैन उपासक और उपासिकाये पद्मावती के प्रति अत्यधिक भक्ति और श्रद्धा युक्त देखे जाते है। यद्यपि जैन परपरा मे महावीर के यक्ष और यक्षिणी भी माने गये है किन्तु देखने मे यह आता है कि महावीर के यक्ष और यक्षिणियो की अपेक्षा पार्श्व के यक्ष और यक्षिणियो की ही जिन मन्दिरो मे अधिक उपासना होती है। जैनो मे यह आस्था दृढमूल हो चुकी है कि पार्श्व के यक्ष और यक्षी पार्श्व की अथवा स्वय उनकी उपासना करने पर तत्काल विघ्नो का उपशमन करते हैं और भक्त का मगल करते है। वस्तुत यह एक ऐसा व्यावहारिक कारण है जिसके आधार पर हम यह समझ सकते हैं कि जैन परम्परा मे पार्श्वनाथ के प्रति इतनी श्रद्धा और आस्था क्यो है ? पार्श्वनाथ का जैन परपरा मे जो महत्त्वपूर्ण स्थान हैं उसके अनेक कारणो मे प्रमुख कारण उन्हे विघ्न-विनाशक के रूप मे स्वीकार कर लेना है।

### पार्श्व का जीवनवृत्त

पार्श्व के जीवन के सम्बन्ध मे हमे सर्वप्रथम उल्लेख कल्पसूत्र और समवायाग सूत्र मे मिलते है। समवायाग सूत्र मे पार्श्व के माता-पिता के नाम, शरीर की ऊँचाई, आयु, गणधरो की सख्या, श्रमण-श्रमणियो एव गृहस्थ उपासक-उपासिकाओ की सख्या आदि के उल्लेख मिलते हैं।[१०] कल्पसूत्र मे पार्श्व सबधी विवरण समवायाग की अपेक्षा कुछ विस्तृत है। उसमे सर्व प्रथम यह बताया गया है कि पार्श्व के पच कल्याणक विशाखा नक्षत्र मे हुए। वे चैत्र कृष्ण चतुर्थी को गर्भ मे आये, पौप कृष्ण दशमी को अर्धरात्रि के पश्चात् विशाखा नक्षत्र मे उनका जन्म हुआ। ३० वर्ष की अवस्था मे पौष कृष्ण एकादशी को पूर्वाह्न मे विशाखा नक्षत्र मे वे आश्रमपद नामक उद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे एक देवदूष्य वस्त्र लेकर प्रव्रजित हुए। प्रव्रजित होने के तिरासी रात्रि के व्यतीत हो

जाने के बाद चौरासीवें दिन ग्रीष्म ऋतु के प्रथम माम चैत्र के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को विशाखा नक्षत्र मे पूर्वाह्नकाल मे उन्हे केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि कल्पसूत्र मे पार्श्वनाथ को कमठ द्वारा दिये गये उपसर्ग का कोई उल्लेख नही है। मात्र यह कहा गया है कि उन्होने देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सबधी अनुलोम और प्रतिलोम सभी उपसर्गों को समभाव से सहन किया। कल्पसूत्र के अनुसार पार्श्व के ८ गण तथा ८ गणधर हुए थे। उनके आठ गणधरो के नाम इम प्रकार हैं—(१) शुभ, (२) आर्यघोष, (३) वशिष्ठ, (४) ब्रह्मचारी, (५) सोम, (६) श्रीहरि, (७) वीरभद्र और (८) यश। किन्तु आवश्यक निर्युक्ति मे पार्श्व के १० गणधर थे ऐसा उल्लेख है। इसी प्रकार अभयदेव की स्थानाग वृत्ति मे भी पार्श्व के १० गणधरो का उल्लेख है। इन दोनो मे पार्श्व के गणधरो का नामोल्लेख नही है। कल्पसूत्र के अनुमार पार्श्व के आर्यदिन्न प्रमुख १६००० श्रमण और पुष्पचूला प्रमुख ३८००० आर्यिकाये थी। विशेष रूप से ध्यान देने योग्य वात यह है कि यहा पार्श्व के प्रधान श्रमण आर्यदिन्न कहे गये हैं जवकि पार्श्व के ८ गणधरो मे कही भी उनका उल्लेख नही है। कल्पसूत्र में पार्श्व के सुव्रत प्रमुख एक लाख चौसठ हजार गृहस्थ उपासक और मुनन्दा प्रमुख तीन लाख सत्ताइस हजार श्राविकाएँ होने का भी उल्लेख है। पार्श्व ने अपने सामान्य जीवन के सत्तर वर्ष जन प्रतिवोध देते हुए व्यतीत किये और वर्षाऋतु के प्रथम-माम श्रावण शुक्ल अष्टमी को निर्वाण प्राप्त किया। पार्श्व के निर्वाण के १२३० वर्ष व्यतीत होने पर कल्पमूत्र लिखा गया।[41]

कल्पसूत्र मे भी पार्श्व के सम्बन्ध मे मात्र कुछ विस्तृत सूचनाएँ ही उपलब्ध होती है, उनका विस्तृत जीवनवृत्त नही मिलता है। श्वेताम्वर परम्परा के ग्रन्थ आवश्यकनिर्युक्ति और दिगम्वर परम्परा के ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ति इनकी अपेक्षा कुछ अधिक सूचनाएँ प्रदान करते हैं किन्तु पार्श्व के जीवनवृत्त का उनमे भी अभाव है। पार्श्व का विस्तृत जीवनवृत्त को जानने का आधार मात्र ईसा की ८ वी शताब्दी के पश्चात् लिखे गये चरित्रग्रन्थ ही हैं।

**पार्श्वनाथ के माता-पिता, वश एव कुल**

समवायाग, कल्पसूत्र और आवश्यकनिर्युक्ति मे पार्श्व के पिता का

नाम आमसेन ( अश्वसेन ) माता का नाम वामा वताया गया है।[42] जवकि दिगम्बर परम्परा के उत्तरपुराण और पद्मपुराण मे पार्श्वनाथ के पिना का नाम विश्वसेन और माता का नाम ब्राह्मी लिखा है।[43] वादिराज ने पार्श्वनाथचरित्र मे पार्श्वनाथ की माता का नाम ब्रह्मदत्ता लिखा है।[44] इस प्रकार पार्श्वनाथ के माता-पिता के नाम श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा मे भिन्न-भिन्न देखे जाते हैं। दिगम्बर परम्परा के ही अपेक्षाकृत कुछ प्राचीन ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ति मे पार्श्वनाथ की माता का नाम वम्मिला कहा गया है।[45] यह नाम श्वेताम्बर परम्परा के वामा से कुछ निकटता तो रखता है फिर भी दोनो को एक नही माना जा सकता। दिगम्बर परम्परा के अन्य कुछ ग्रन्थो मे अश्वसेन के पर्यायवाची के रूप मे हयसेन ऐसा नाम भी मिला है। नामो की यह भिन्नता विचारणीय है।

पार्श्वनाथ के कुल और वश के सबध मे श्वेताम्बर आगम समवायाग और कल्पसूत्र मे कोई स्पष्ट उल्लेख नही है। आवश्यकनिर्युक्ति पार्श्वनाथ के कुल का स्पष्टरूप से तो उल्लेख नही करती है, किन्तु उसमे अरिष्टनेमि एव मुनिसुव्रत को छोडकर शेष २२ तीर्थंकरो को काश्यप गोत्रीय कहा है।[46] दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ उत्तरपुराण मे पार्श्वनाथ को उग्रवशीय कहा गया है।[47] तिलोयपण्णत्ति मे भी उनको उग्रवशीय बताया है।[48] यह सभावना व्यक्त की जा सकती है कि पार्श्व उरग वश (नागवश) के हो और उसी का रूपान्तरण भ्रान्तिवश उग्ग या उग्र के रूप मे हो गया हो। हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित मे[49] और देवभद्र ने पार्श्वनाथ चरित मे[50] उनको इक्ष्वाकु कुल का वताया है। क्षत्रियो मे इक्ष्वाकु कुल प्रसिद्ध रहा है और सभवत इसीलिए पार्श्व को भी इसी कुल का मान लिया गया हो। इस सत्र आधारो से ऐसा लगता है कि जैन परम्परा मे पार्श्वनाथ के कुल, वश एव माता-पिता के नामो को लेकर एकरूपता नही है। वैसे उन्हे उरगवशीय या नागवशीय मानना अधिक उचित है। सम्भवत उनके नागवशीय होने से नाग को उनके साथ जोडा गया हो।

**पार्श्व का नामकरण**

पार्श्व के नामकरण के सन्दर्भ मे आगम साहित्य मे किसी घटना

का स्पष्ट उल्लेख नही है। यद्यपि आवश्यकचूर्णि, त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित्र, पासनाहचरिउ आदि के अनुसार पार्श्वनाथ के गर्भकाल मे माता के द्वारा अधेरी रात्रि मे पास मे चलते हुए सर्प को देखे जाने के कारण उन्हे पार्श्व ऐसा नाम दिया गया।[51] दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे इन्द्र के द्वारा उनका नाम पार्श्व रखे जाने का उल्लेख है।[52] यद्यपि ये सभी कल्पनाये ही लगती है, कोई ठोस प्रमाण नही है।

## पार्श्व का विवाह प्रसग

पार्श्व के विवाह प्रसग को लेकर श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के आचार्यों मे मतभेद है। श्वेताम्बर आगम ग्रन्थ समवायाग, कल्पसूत्र, आवश्यकनिर्युक्ति आदि मे हमे पार्श्वनाथ के विवाह के सबध मे कोई भी उल्लेख नही मिलता है। श्वेताम्बर परम्परा के ही अन्य ग्रन्थ आवश्यकनिर्युक्ति तथा पउमचरिय मे और दिगम्बर परम्परा के तिलोयपण्णत्ति, पद्मपुराण एव हरिवशपुराण मे यह उल्लेख है कि वासुपुज्ज, मल्लि, नेमि, पार्श्व और महावीर—ये तीर्थंकर कुमार अवस्था मे दीक्षित हुए शेष ने राज्य किया।[53] कुमार अवस्था मे दीक्षित होने का अर्थ जहा दिगम्बर परम्परा अविवाहित होना मानती है वहाँ श्वेताम्बर परम्परा युवराज अवस्था ऐसा अर्थ करती है। 'कुमार' का अर्थ युवराज अवस्था करना अधिक सगत है क्योकि श्वेताम्बर एव दिगम्बर दोनो ही ग्रन्थो मे इस गाथा के अगले ही चरण मे कहा गया है कि इन्होने राज्य नही किया। आवश्यकनिर्युक्ति मे प्रयुक्त 'कुमार' शब्द का अर्थ अविवाहित किया जा सकता है क्योकि गाथा के अगले चरण मे 'णो इत्थिया अभिसेया' पाठ मिलता है, जिसका अर्थ विवाह हो सकता है किन्तु अनेक प्रतियो मे 'इत्थिया' के स्थान पर 'इच्छिया' पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ होगा राज्याभिषेक की कामना नही की। पुन आवश्यकनिर्युक्ति के कुमार शब्द का अर्थ अविवाहित करने पर आचाराग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे और उसमे अन्तर्विरोध होगा, क्योकि आचाराग द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे महावीर के विवाहित होने का उल्लेख है।[54]

श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थ चउपन्नमहापुरिसचरिय,[55] त्रिषष्टि-शलाका पुरुषचरित्र[56] और देवभद्र के सिरिपासणाहचरिय[57] मे

तथा परवर्ती श्वे० आचार्यों के पार्श्वनाथ चरित्रो मे उनके विवाह का उल्लेख हुआ है। जबकि दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ति, पद्मचरित उत्तरपुराण और वादिराजकृत पार्श्वनाथ चरित्र मे कुश-स्थल जाने और विवाह करने का उल्लेख नही है। दिगम्बर आचार्य पद्मकीर्ति ने कुशस्थल जाने और उनके विवाह प्रस्ताव का प्रसग उठा-कर भी विवाह होने का प्रसङ्ग नही दिया है।[58] इस प्रकार हम देखते है कि पार्श्व के विवाह के सम्बन्ध मे श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के आचार्यों मे मतभेद है। प्राचीन आगमिक प्रमाणो के इस सम्बन्ध मे मौन होने से निर्णयात्मक रूप मे कुछ कह पाना कठिन है। वस्तुत पार्श्वनाथ के चरित्र लेखन मे क्रमश विकास देखा जाता है, इसलिए उनमे परम्परागत अनुश्रुतियो और लेखक की कल्पनाओ का मिश्रण होता रहा है।

**कमठ और नागोद्धार की घटना**

पार्श्व के जीवन वृत्त के साथ कमठ से हुए उनके विवाद और नाग-नागिन के उद्धार की घटना बहुचर्चित है। किन्तु प्राचीन श्वेता-म्बर आगम समवायाग और कल्पसूत्र इस घटना के सबध मे भी मौन है। आवश्यकनिर्युक्ति मे भी इस सबध मे कोई उल्लेख नही है। कमठ तापस से उनके विवाद और नाग उद्धार की घटना का उल्लेख हमे श्वे० साहित्य मे सर्वप्रथम चउपन्नमहापुरिसचरिय[59] मे मिलता है। उसके अनुसार कमठ (कढ) नामक एक तपस्वी वाराणसी के निकट वन मे तप कर रहा था। पार्श्वकुमार ने समूहो मे पूजा सामग्री लेकर लोगो को जाते देखकर अपने अनुचरो से इस सबध मे पूछा कि ये लोग कहा जा रहे हैं? अनुचरो ने बताया कि नगर मे कमठ नाम का एक महातपस्वी आया है। ये लोग उसी का वन्दन करने जा रहे हैं। पार्श्व भी कमठ को देखने गये। वहा उन्होंने देखा कि कमठ पचाग्नि तप कर रहा है। हिंसा युक्त तप को देखकर पार्श्व ने तापस से कहा कि धर्म तो दया मूलक है, अग्नि को प्रज्ज्वलित करने से उसमे अनेक जीवो की हिंसा होती है। तपस्वी ने कुमार को कहा कि तुम अभी बालक हो तुम धर्म को क्या जानते हो? बताओ यहा किस जीव की हिंसा हो रही है? पार्श्व ने जलते हुए लक्कड को अग्नि से निकालकर सावधानी से चीरकर और उसमे जलते हुए सर्प को दिख-

लाया। कथा के अनुसार उसे णमोकारमन्त्र सुनवाया और वह मरकर धरणेन्द्र नामक देव हुआ। कमठ इस घटना के कारण लज्जित हुआ और जन-सामान्य में उसकी प्रतिष्ठा गिरी। फलत: वह पार्श्व का विरोधी बन गया। कथानक के अनुसार कमठ मरकर मेघमाली नामक देव हुआ और उसने जब पार्श्वनाथ साधना कर रहे थे अतिवृष्टि करके उन्हें उपसर्ग (कष्ट) दिया। उस समय धरणेन्द्र ने आकर पार्श्व को जल से ऊपर उठाया। परवर्ती पार्श्व चरित्र सबन्धी विभिन्न ग्रन्थों में भी इस घटना के वर्णन में भिन्नता है। पद्मकीर्ति के पार्श्वनाथ चरित्र[60] के अनुसार यवनराज को परास्त करने के पश्चात् पार्श्व कुशस्थल में निवास कर रहे थे। उसी समय उन्होंने अनेक लोगों को अर्चना की सामग्री लेकर नगर के बाहर जाते देखा। राजा रविकीर्ति से पूछने पर ज्ञात हुआ कि उस स्थल से एक योजन की दूरी पर वनखण्ड में अनेक तापस निवास करते हैं और कुशस्थल के निवासी उनके परम भक्त हैं। पार्श्वनाथ ने वहाँ जाकर देखा कि कुछ तपस्वी पचाग्नि तप कर रहे हैं। कुछ धूम्र-पान कर रहे हैं, कुछ लोग पांव के बल वृक्षों पर लटके हैं और उनका शरीर अत्यत कृश हो गया है। उसी समय पार्श्व ने कमठ नामक एक तापस को जगल से लकड़ी का एक बोझ लेकर आते हुए देखा। वह लकडी को अग्नि में डालना ही चाहता था कि पार्श्व ने उसे रोका और कहा कि इसमें भयङ्कर सप है। क्रोधवश कमठ ने उस लक्कड को चीरा और उसमें से एक सर्प निकला, जो कि लक्कड के चीरने के कारण क्षत-विक्षत हो चुका था। पार्श्व ने उसे णमोकारमन्त्र सुनाया और वह नागराजाओं के बीच वीरदेव के रूप में उत्पन्न हुआ। उत्तरपुराण[61] में गुणभद्र ने इसी घटना को पार्श्वनाथ के ननिहाल में घटित होना बताया। साथ ही तापस के रूप में पार्श्व के नाना महीपाल का उल्लेख किया है।

उपर्युक्त घटना के घटना-स्थल को लेकर भी विविधता है। चउपन्नमहापुरिसचरिय में इस घटना को वाराणसी में घटित होना बताया गया है। जबकि उत्तरपुराण में उसे पार्श्व के नाना के आश्रम में घटित होना बताया है। पद्मकीर्ति ने पार्श्वनाथ चरित्र में इसे कुशस्थल में होना बताया है। इसी प्रकार चउपन्नमहापुरिसचरिय

रहा होगा। पार्श्व और महावीर के काल मे वगाल अनार्य क्षेत्र माना जाता था। निर्युक्ति का अनार्य भूमि से तात्पर्य उसी क्षेत्र से है।

**पार्श्व के कथानक का ऐतिहासिक विकासक्रम**

जैसा कि हम पूर्व मे निर्देश कर चुके हैं, पार्श्वनाथ के जीवन वृत्त के सबध मे प्राचीन उल्लेख अल्पतम ही है। किन्तु इसके विपरीत पार्श्वनाथ के उपदेश, उनकी धार्मिक और दार्शनिक मान्यताए, पार्श्वापत्य श्रमणो का स्वय महावीर से अथवा महावीर के श्रमणो से मिलने एव तत्त्वचर्चा करने आदि के उल्लेख प्राचीन आगम साहित्य मे पर्याप्त रूप से उपलब्ध है। पार्श्व के जीवन वृत्त के सबन्ध मे समवायाग, कल्पसूत्र एव आवश्यकनिर्युक्ति मे उनका वश, माता-पिता के नाम, गर्भावतरण, जन्म, दीक्षा, कैवल्य और निर्वाण की तिथियाँ एव नक्षत्र, गणधरो के नाम तथा श्रमण-श्रमणी एव उपासक-उपासिकाओ की सख्या सबधी उल्लेख मिलते हैं।[67] पार्श्वनाथ के जीवनवृत्त की प्रमुख घटनाओ के सबध मे ये ग्रन्थ लगभग मौन ही हैं। साथ ही कल्पसूत्र, समवायाग, आवश्यकनिर्युक्ति एव तिलोयपण्णत्ति के सब विवरण २४ तीर्थंकरो की मान्यता के स्थिर होने के पश्चात् अर्थात् लगभग तीसरी-चौथी शताब्दी के बाद के ही लगते हैं। आगम साहित्य मे पार्श्व सबधी विवरणो मे प्राचीन स्तर के विवरण तो मात्र पार्श्वापत्यो के महावीर एव महावीर के श्रमणो से मिलन को तथा पार्श्व की तात्त्विक तथा आचार सबधी मान्यताओ को सूचित करते हैं। यहाँ हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि यह स्थिति केवल पार्श्व के सबध मे ही नही है, अपितु सभी भारतीय चिन्तको और साधको के सबध मे भी है।

प्राचीन युग मे केवल उपदेश भाग को ही महत्ता दी जाती थी और इसलिए उसी को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया जाता था। जैन परपरा मे पार्श्व के सबध मे विकसित कथानको मे उनके एव कमठ के पूर्व भवो तथा दोनो के पारस्परिक सम्बन्धो का विवरण, इस भव मे घटित कमठ तापस सम्बन्धी घटना, पार्श्व का यवन राज को विजित करने के लिए प्रस्थान करना तथा प्रसेनजित की

पुत्री प्रभावती के साथ उनके विवाह संबंधी कथावस्तु का प्रमुख रूप से उपलब्ध होती है। किन्तु जैसा कि हमने देखा है यह विवरण आगम साहित्य में और निर्युक्तियों में कहीं भी उपलब्ध नहीं होते हैं। श्वेताम्बर परम्परा में पार्श्व से सम्बन्धित उपर्युक्त सभी कथानक विकसित रूप से सर्वप्रथम शीलांक के चउपन्नमहापुरिसचरियं में उपलब्ध होते हैं।[55] यह ग्रन्थ लगभग ईसा की नौवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखा गया है। इसके बाद के सभी टीकाकारों और ग्रन्थकारों ने इन घटनाओं का उल्लेख किया है। दिगम्बर परम्परा में पार्श्वनाथ के कथानक सम्बन्धी विवरण का प्राचीनतम आधार यतिवृषभ कृत तिलोयपण्णत्ति है,[59] किन्तु उसमें भी श्वेताम्बर आगम साहित्य के अनुरूप ही तीर्थंकरों के जन्म स्थान, पंच कल्याणक उनके नक्षत्र, माता-पिता आदि सम्बन्धी उल्लेख मात्र मिलते हैं। पार्श्व के सम्बन्ध में विस्तृत कथानक का इसमें भी अभाव है। दिगम्बर परम्परा में पार्श्व का विस्तृत कथानक सर्वप्रथम जिनसेन के पार्श्वाभ्युदय एवं गुणभद्र के उत्तरपुराण में उपलब्ध होता है।[60] ग्रन्थ भी ईसा की ९वीं शताब्दी में लिखे गये हैं। अतः श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं में पार्श्व से सम्बन्धित विस्तृत कथानक हमें नवीं शताब्दी से पूर्व उपलब्ध नहीं होते हैं। परवर्ती श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में पार्श्वनाथ पर जो भी चरित्र ग्रन्थ लिखे गये हैं उन सबमें इन्हीं कथानकों का विकास देखा जाता है। वे सभी भी पार्श्व के सम्बन्ध में उनके पूर्व भव, कमठ सम्बन्धी घटना तथा प्रभावती की ओर प्रसेनजित के राज्य की यवनराज के आक्रमण से सुरक्षा आदि के उल्लेख से युक्त हैं। 'यवनराज' शब्द स्वयं इस कथानक को परवर्ती काल का सिद्ध करता है।

सकता है कि अनुश्रुति के रूप मे ये कथानक इनके पूर्व भी प्रचलित रहे होगे। कल्पसूत्र भी कम से कम इतना उल्लेख अवश्य करता है कि पार्श्वनाथ ने अपने साधनाकाल मे देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सबधित अनेक उपसर्गों को सहन किया। सम्भवत इसी आधार पर आगे कमठ सवधी घटनाक्रम का विवरण लिखा गया होगा। पार्श्वनाथ और कमठ के इसी कथानक का विकास पार्श्वनाथ के पूर्व भवो सबधी विवरणो मे भी देखा जाता है। पार्श्व के जीवनवृत्त मे कमठ सबधी घटनाक्रम को स्थान देने के दो उद्देश्य हैं, प्रतीत होते प्रथम तो इस घटनाक्रम द्वारा श्रमण परपरा मे विकसित अविवेकपूर्ण देह-दण्डन की आलोचना कर विवेकपूर्ण ज्ञानमार्गी साधना की प्रतिष्ठा करना और दूसरा कर्मसिद्धात की अनिवार्यता को सिद्ध करना।

प्रभावती सबधी प्रसग परवर्ती सभी श्वेताम्बर और कुछ दिगम्बर ग्रन्थो मे उपलब्ध है। मात्र अन्तर यह है कि जहाँ श्वेताम्बर परपरा के कथा लेखक प्रभावती की यवनराज से सुरक्षा करने के साथ-साथ बाद मे प्रमेनजित और अश्वसेन के आग्रह पर उसके साथ पार्श्व के विवाह का भी उल्लेख कर देते हैं, वहाँ दिगम्बर परपरा के वे ग्रन्थकार जिन्होने इस प्रसग को चित्रित किया है, पार्श्व की वैराग्य भावना को प्रदर्शित कर विवाह के लिए उनके स्पष्ट निषेध को चित्रित करते हैं। इस घटनाक्रम मे जो यवनराज का उल्लेख है उससे ऐसा लगना है कि यह कथानक यवनो के भारत प्रवेश के पश्चात् ही कभी विकसित हुआ होगा। पार्श्व के जीवन वृत्त सबधी घटनाक्रमो के प्राचीन उल्लेखों के अभाव से हमे पार्श्व के अस्तित्व और उनकी ऐतिहासिकता के सबध मे कोई प्रश्न चिह्न नही खडा करना चाहिए, क्योकि उनके एव उनकी परपरा के अस्तित्व तथा उनके उपदेशो से सबधित विवरण ऋषिभाषित, आचाराग द्वितीय-श्रुतस्कन्ध, सूत्रकृताग और भगवती जैसे प्राचीन स्तर के आगम ग्रन्थो मे स्पष्ट रूप से उपलब्ध हैं।

### पार्श्वनाथ का अवदान

भारतीय सस्कृति की श्रमण धारा मूलत त्याग और तप को प्रधानता देती है और इसी कारण ही इसकी लोक मे प्रतिष्ठा रही है। यह सुनिश्चित है कि पार्श्वनाथ इसी श्रमण परम्परा के प्रवक्ता

हैं, किन्तु उनका इस श्रमण परम्परा को एक विशिष्ट अवदान है। यद्यपि श्रमणों ने वैदिकों के हिंसक यज्ञ-यागों का खण्डन कर उनकी कर्मकाण्डी परम्परा को अस्वीकार कर दिया था, किन्तु श्रमण धारा में भी यह कर्मकाण्ड किसी तरह प्रविष्ट हो गया था। उसमें भी तप और ध्यान-विवेक प्रधान न रह कर कर्मकाण्ड-प्रधान बन गये थे। ऐसा लगता है कि पार्श्वनाथ के युग में श्रमण धारा में भी तप और त्याग के साथ कर्मकाण्ड पूरी तरह जुड़ा हुआ था और तप बाह्याडम्बर और देहदण्डन की एक प्रक्रिया से अधिक कुछ नहीं था। कठोरतम देहदण्डन द्वारा लोक में अपनी प्रतिष्ठा को अर्जित करना ही उस युग के श्रमणों और सन्यासियों का एकमात्र उद्देश्य था। औपनिषदिक ऋषियों की ज्ञानमार्गी धारा अभी अपना रूप ले रही थी अतः सम्भव यही लगता है कि पार्श्व ने सर्वप्रथम श्रमण परम्परा में प्रविष्ट हुए इस देहदण्डन और कर्मकाण्ड का विरोध किया। उनके जीवनवृत्त में कमठ तापस का जो विवरण जुड़ा है, उसका उद्देश्य भी तप और ध्यान को मात्र देह दण्डन की प्रक्रिया से मुक्त करना है।

पार्श्वनाथ अभी युवा ही हुए थे, उन्होंने देखा कि वैदिक परम्परा के यज्ञों में प्राणियों का बलिदान हो रहा है। किन्तु वैदिकों की पर-पीडन की प्रवृत्ति का स्थान श्रमण धारा में स्व-पीडन ने ले लिया दूसरों को बलिवेदी पर चढ़ाने के स्थान पर व्यक्ति स्वयं अपने को बलिदान की वेदी पर चढ़ाने लगा है। पर-पीडन की वृत्ति आत्म-पीडन के रूप में विकसित होने लगी थी और इस आत्म-पीडन में भी किसी न किसी रूप में पर-पीडन जुड़ा हुआ था। इसीलिये पार्श्व कुमार को कमठ से कहना पड़ा होगा कि तुम्हारी इस साधना में आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति कहाँ है? इसमें न तो स्वहित है और न परहित या लोकहित। खुद भी पीडित हो रहे हो और दूसरों को भी पीडित कर रहे हो। एक ओर पंचाग्नि तप की इस ज्वाला में तुम्हारा शरीर झुलस रहा है तो दूसरी ओर इसमें छोटे-बड़े अनेक जीव-जन्तु भी झुलस रहे हैं। न जाने कितने कीट-पतंग तुम्हारी इस अग्नि की ज्वाला में जीवन की बलिवेदी पर चढ़ रहे हैं। मात्र यही नहीं तुम जिस लक्कड़ को जला रहे हो उसमें एक नाग युगल भी जल रहा है। पार्श्व के कथानक में लक्कड़ को खींचकर उसमें से उस नाग युगल को बचाने

की जो घटना वर्णित है, वह यह बोध कराती है कि ऐसी साधना जिसमे आत्म-पीडन और पर-पीडन जुडा हो, सच्ची साधना नही हो सकती। साधना मे ज्ञान और विवेक की प्रतिष्ठा आवश्यक है। वह देहदण्डन भी जिसमे ज्ञान और विवेक के तत्त्व नही हैं, आत्म-पीडन से अधिक कुछ नही है। देह को पीडा देना साधना नही है। साधना तो मनोविकारो की निर्मलता है, आत्मा मे सहज आनन्द की अनुभूति है। पार्श्व की यह हितशिक्षा चाहे कमठ जैसे उस युग के तापसो को अच्छी न लगी हो किन्तु इसमे एक सत्य निहित है। धर्म साधना को न तो दूसरो की पीडा के साथ जोडना चाहिए और न आत्म-पीडन के साथ। मुक्ति प्राप्ति का अर्थ है वासना और विकारो से मुक्ति।[71]

ऐसा लगता है कि पार्श्वनाथ ने अपने युग मे धर्म और साधना के क्षेत्र मे एक महत्त्वपूर्ण क्रान्ति की होगी। उन्होने साधना को सहज बनाने का प्रयत्न किया और उसमे ज्ञान और विवेक के तत्त्व को प्रतिष्ठित किया। भगवान् बुद्ध ने आगे चलकर उभय अन्तो के परित्याग के रूप मे जिस धर्ममार्ग का प्रवर्तन किया था उसका मूलस्रोत पार्श्व की परम्परा मे निहित था। पार्श्व धर्म और साधना को पर-पीडन और आत्म-पीडन से मुक्त करके आत्म शोधन या निर्विकारता की साधना के साथ जोडते हैं और यही उनका भारतीय सस्कृति और श्रमण परम्परा को सबसे बडा अवदान है।

## पार्श्व की धार्मिक और दार्शनिक मान्यतायें

जहाँ तक पार्श्व की मान्यताओ का प्रश्न है, आज हमे उनकी परम्परा का ऐसा कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नही होता जो इस पर प्रकाश डालता हो। पार्श्व की दार्शनिक और आचार सम्बन्धी मान्यताओ को जानने और समझने के हमारे पास जो भी प्राचीनतम साधन उपलब्ध हैं वे श्वेताम्बर परम्परा मे मान्य आगम ग्रन्थ ही हैं। इनमे भी ऋषिभाषित ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमे पार्श्व के नाम से एक स्वतन्त्र अध्याय है।[72] जिसमे उनकी दार्शनिक और आचार सम्बन्धी मान्यताओ को स्पष्ट किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ऋषिभाषित प्रत्येक ऋषि के उपदेश को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करता है। याज्ञवल्क्य, मखलीगोशाल,

महाकश्यप, सारिपुत्र आदि अध्यायो को देखने से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है। अत उनमे प्रस्तुत पार्श्व के विचार भी प्रामाणिक माने जा सकते है। ऋषिभाषित के पश्चात् श्वेताम्बर आगम ग्रन्थों मे उत्तराध्ययन का स्थान आता है जिसमे गौतम केशी के सवाद मे पार्श्व की परम्परा की मुख्य मान्यताओ के सम्बन्ध मे सक्षिप्त सूचनायें उपलब्ध होती हैं।[73] इसके पश्चात् सूत्रकृताग और भगवती मे कुछ ऐसे प्रसग हैं जहाँ पार्श्वापत्यो द्वारा या उनके माध्यम से पार्श्व की मान्यताओ को सकेतित किया गया है। भगवती का एक स्थल तो ऐसा है जहाँ महावीर पार्श्व की मान्यताओ से अपनी सहमति भी प्रकट करते हैं।[74] 'रायपसेनिय' मे राजा पयासी (प्रदेशी) और केशी के बीच हुए सवाद मे आत्मा के अस्तित्व सम्बन्धी जो प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं वे भी पार्श्व की परम्परा से सम्बन्धित माने जा सकते हैं।[75] क्योकि उनके प्रतिपादक केशी स्वय पार्श्व की परम्परा से सम्बन्धित हैं। सूत्रकृताग, उत्तराध्ययन और आवश्यकनिर्युक्ति मे कुछ ऐसे स्थल भी हैं जहाँ पार्श्व की परम्परा और महावीर की परम्परा मे अन्तर को स्पष्ट किया गया है।[76]

प्रस्तुत प्रसग मे इन्ही सब आधारो पर हम पार्श्व की मूलभूत दार्शनिक और आचार सम्बन्धी मान्यताओ को स्पष्ट करेंगे। साथ ही उनमे और महावीर की मान्यताओ मे क्या अन्तर रहे हैं, अथवा महावीर ने पार्श्व की परम्परा को किस प्रकार सशोधित किया है, इसकी चर्चा करेंगे।

### ऋषिभाषित मे वर्णित पार्श्व का धर्म और दर्शन

जैसा कि हम पूर्व मे सकेत कर चुके हैं कि पार्श्व के उपदेशो का प्राचीनतम सन्दर्भ हमे ऋषिभाषित मे प्राप्त होता है। ऋषिभाषित मे पार्श्व की मान्यता के सन्दर्भ मे से दर्शन सम्बन्धी और आचार सम्बन्धी दोनो ही पक्ष उपलब्ध होते हैं। यहा हमे यह भी स्मरण रखना चाहिये कि ऋषिभाषित मे पार्श्व नामक अध्ययन ही ऐसा है जिसका एक पाठान्तर भी उपलब्ध होता है। ग्रन्थकार ने इसकी चर्चा करते हुए स्वय ही कहा है कि "गति व्याकरण नामक ग्रन्थो मे इस अध्याय का दूसरा पाठ भी देखा जाता है।"[77] इस सूचना के साथ

उसमे इस अध्याय के पाठान्तर को सम्पूर्ण रूप से प्रस्तुत किया गया है। सर्वप्रथम हम ऋषिभाषित के इसी अध्याय के आधार पर पार्श्व के दर्शन और धर्म को समझने का प्रयत्न करेंगे।

दार्शनिक दृष्टि से ऋषिभाषित मे मुख्यत लोक के स्वरूप की तथा जीव और पुद्‌गल की गति की, कर्म एव उसके फल-विपाक की और विपाक के फलस्वरूप विविध गतियो मे होने वाले सक्रमण की चर्चा की गयी है। आचार सबधी चर्चा के सन्दर्भ मे मुख्यरूप से इसमे चातुर्याम, निर्जीव-भोजन और मोक्ष की चर्चा हुई है।

"प्रथम प्रश्न है—लोक क्या है ? उत्तर मे कहा गया है कि जीव और अजीव यही लोक हैं। पुन प्रश्न किया गया कि लोक कितने प्रकार का है ? इम प्रश्न के उत्तर मे कहा गया है कि लोक चार प्रकार का है द्रव्य लोक, क्षेत्र लोक, काल लोक और भाव लोक। लोकभाव किम प्रकार का है ? इसके उत्तर मे कहा गया है कि लोक-स्वत अस्तित्ववान् है। स्वामित्व की दृष्टि से यह लोक जीवो का है। निर्माण की दृष्टि से यह लोक जीव और अजीव दोनो से निर्मित है। लोक-भाव किस प्रकार का है ? इसके उत्तर मे कहा गया है कि यह लोक अनादि, अनिधन और पारिणामिक (परिवर्तनशील) है। इसे लोक क्यो कहा जाता है ? इमके प्रत्युत्तर मे कहा गया है कि अवलोकित या दृश्यमान होने से इसे लोक कहा जाता है। लोक-व्यवस्था गति ( परिवर्तन ) पर आधारित है। गति सम्बन्धी प्रश्नो के प्रत्युत्तर मे कहा गया है कि गमनशील होने से इसे गति कहा जाता है। जीव और पुद्‌गल दोनो ही गति करते हैं। यह गति भी चार प्रकार की है—द्रव्यगति, कालगति, क्षेत्रगति और भावगति। यह गति-भाव अर्थात् गति का चक्र अनादि और अनिधन है।

इसी प्रसग मे पार्श्व के कर्म सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जीव स्वभावत ऊर्ध्वगामी होते हैं और पुद्‌गल अधोगामी। जीव कर्म-प्रधान हैं और पुद्‌गल परिणाम प्रधान। जीव की गति कर्म से प्राप्त फल विपाक के द्वारा होती है और पुद्‌गल की गति परिणाम के विपाक (स्वाभाविक परिवर्तन) के द्वारा होती है। कोई भी कषाय अर्थात् हिंमा से युक्त होकर शाश्वन सुख को प्राप्त नही कर सकता।

जीव दो प्रकार की वेदना का अनुभव करते हैं (सुख रूप और दु ख रूप)। प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से विरत होकर जीव सुख का वेदन करता है। इसके विपरीत हिंसा आदि कृत्यो से जीव भय और दु ख को प्राप्त होता है। जिसने अपने कर्तव्य मार्ग का निश्चय कर लिया है, जो समार मे जीवन निर्वाह के लिये निर्जीव पदार्थों का ही आहार करता है, जिमने आस्रवो के द्वार वन्द कर लिये हैं ऐसा भिक्षु इस ससार प्रसूत वेदना का छेदन करता है। ससार / भव भ्रमण का नाग करता है और भव-भ्रमण जन्य वेदना का नाग करता है। उमका समार समाप्त हो जाता है और उसकी मामारिक वेदना अर्थात् मसार के दु ख भी समाप्त हो जाते हैं। वह बुद्ध, विरत, विपाप और गान्त होता है और पुन ससार मे जन्म नही लेता है।"[78]

ऋषिभाषित मे पार्श्व की मान्यताओ को पाठभेद से दो प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। इमी 'ग्रन्थ मे गति व्याकरण' नामक ग्रन्थ मे उपलब्ध पाठ के आधार पर पार्श्व की मान्यताओ को निम्न रूप मे प्रस्तुत किया गया है—"जीव और पुद्गल दोनो ही गतिशील हैं। गति दो प्रकार की है—प्रयोगगति (परप्रेरित) और विस्रमागति। ये (स्वत प्रेरित) गतियाँ जीव और पुद्गल दोनो मे ही होती हैं। औदायिक और पारिणामिक—ये गति के रूप है और गमनशील होने से इसे गति कहते हैं। जीव ऊर्ध्वगामी होते हैं और पुद्गल अधोगामी। पाप कर्मशील जीव परिणाम (मनोभाव) से गति करता है और वह पुद्गल की गति मे प्रेरक भी होता है। जो पापकर्मों का वशवर्ती है वह कभी भी दु ख रहित नही होगा, अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नही होगा। वे पाप-कर्म प्राणाति-पात से लेकर परिग्रह तक हैं। वह असम्बुद्ध अर्थात् ज्ञान रहित जीव कर्म के द्वारो को न रोकने वाला, चातुर्याम धर्म से रहित, आठ प्रकार की कर्म-ग्रन्थि को बाँधता है और उन कर्मों के विपाक के रूप मे नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गनि को प्राप्त करता है। जीव स्वकृत कर्मों के फल का वेदन करता है परकृत कर्मो का नही। मम्यक् सम्बुद्ध जीव कर्म आगमन के द्वारो को वन्द कर देने वाला, चातुर्याम धर्म का पालन करने वाला आठ प्रकार की कर्म-ग्रथि को नहीं बाँधता है और इस प्रकार उनके विपाक के रूप मे नारक, देव, मनुष्य और पशु गति को भी प्राप्त नही होता है।"[79] इस प्रकार ऋषिभाषित के आधार पर

पार्श्वनाथ की दार्शनिक और आचार सबधी मान्यताओ का एक सक्षिप्त चित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

**अन्य आगम ग्रन्थो मे वर्णित पार्श्व का धर्म और दर्शन**

यदि हम सूत्रकृताग की ओर आते है तो हमे पार्श्वनाथ की मान्यताओ के सम्बन्ध मे कुछ और अधिक जानकारी प्राप्त होती है। सूत्रकृताग मे 'उदक पेढालपुत्र' नामक पार्श्वापत्य श्रमण की महावीर के प्रधान गणधर गौतम मे हुई चर्चा का उल्लेख है। उदक पेढालपुत्र गौतम से प्रश्न करते है कि आपकी परम्परा के कुमारपुत्रीय श्रमण श्रमणोपासक को इस प्रकार का प्रत्याख्यान कराते हैं कि "राजाज्ञादि कारण से किसी गृहस्थ को अथवा चोर को बाधने-छोड़ने के अतिरिक्त मैं किसी त्रस जीव की हिंसा नही करूँगा।" किन्तु इस तरह का प्रत्याख्यान दु प्रत्याख्यान है, क्योकि त्रस जीव मरकर स्थावर हो जाता है और स्थावर जीव मरकर त्रस हो जाता है। अत उन्हे इस प्रकार सविशेष प्रत्याख्यान करवाना चाहिये कि "मैं राजाज्ञादि कारण से गृहस्थ को अथवा चोर को बाधने या छोडने के अतिरिक्त त्रसभूत अर्थात् त्रस पर्याय वाले किसी जीव की हिंसा नही करूँगा। इस प्रकार 'भूत' अर्थात् त्रस अवस्था को प्राप्त विशेषण लगा देने से उक्त दोषापत्ति नही होगी। गौतम ने उनकी इस शका का समाधान करते हुए इस बात को विस्तार से स्पष्ट किया है कि प्रत्येक प्रत्याख्यान किसी भी जीव की अवस्था विशेष से ही सम्बन्धित होता है। जो त्रस प्राणियो की हिंसा का प्रत्याख्यान करता है वह त्रस पर्याय मे रहे हुए जीवो की ही हिंसा का प्रत्याख्यान करता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति श्रमण पर्याय त्यागकर गृहस्थ बन जाय तो वह गृहस्थ ही कहा जायेगा, श्रमण नही, इसी प्रकार त्रस काय से स्थावर काय मे गया जीव स्थावर है त्रस नही।[४०] इस चर्चा से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है पार्श्वापत्यो मे भी हिंसा आदि के प्रत्याख्यान की परम्परा थी और साथ ही वे प्रत्याख्यान की भाषा के प्रति भी अत्यन्त सजग थे।

भगवती सूत्र मे पार्श्वापत्य गागेय अनगार और भगवान् महावीर की चर्चा का उल्लेख है। इसमे चारो गतियो मे जन्म और मृत्यु के

उल्लेख मिलता है। इस चर्चा मे मुख्य रूप से सामायिक, प्रत्याख्यान, सयम, सवर, विवेक और व्युत्सर्ग के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। मात्र यही नही, यहा यह भी बताया गया है कि आत्मा ही सामायिक है, सयम है, सवर है, विवेक है, इत्यादि। क्योकि ये सभी आत्मापूर्वक होते हैं। यहाँ यह भी प्रश्न उपस्थित किया गया कि आत्मा ही सामायिक है तो फिर कषाय आदि भी आत्मा ही होगे और फिर कषायो की निन्दा क्यो की जाती है। पुन यह प्रश्न भी उठाया गया कि निन्दा सयम है या अनिन्दा। इसके स्पष्टीकरण मे महावीर के स्थविरो ने कहा कि परनिन्दा असयम है और आत्मनिन्दा सयम है।[83]

इसी प्रकार एक अन्य प्रसग मे भगवती मे महावीर के श्रमणोपासको और पार्श्वापत्य श्रमणो के बीच हुई वार्ता का भी उल्लेख मिलता है। इसमे महावीर के श्रमणोपासक सयम और तप के फल के विषय मे प्रश्न करते हैं। पार्श्वापत्य स्थविर इसके उत्तर मे कहते हैं कि सयम का फल अनाश्रव है और तप का फल निर्जरा है। पार्श्वापत्य श्रमणो के इस उत्तर पर महावीर के श्रमणोपासक फिर प्रश्न करते हैं कि यदि सयम का फल अनास्रव तथा तप का फल निर्जरा है तो जीव-देवलोक मे किस कारण से उत्पन्न होते हैं ? इस सम्बन्ध मे पार्श्वापत्य श्रमण विभिन्न रूपो मे उत्तर देते हैं। कालीयपुत्र स्थविर कहते है कि प्राथमिक तप से देवलोक मे देव उत्पन्न होते हैं। मेहिल स्थविर कहते हैं कि प्राथमिक सयम से देवलोक मे देव उत्पन्न होते है। आनन्द रक्षित स्थविर कहते हैं कि कार्मिकता अर्थात् सराग सयम और तप के कारण जो कर्मबन्ध होता है उसके निमित्त से देवलोक मे देव उत्पन्न होते है। काश्यप स्थविर कहते है कि सागिकता (आसक्ति) से देवलोक मे देव उत्पन्न होते हैं।[84]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पार्श्वापत्य परम्परा मे तप, सयम, आस्रव, अनास्रव, निर्जरा आदि की अवधारणायें न केवल व्यवस्थित रूप से उपस्थित थी, अपितु उन पर गम्भीरता पूर्वक चिन्तन भी किया जाता था।

उत्तराध्ययन सूत्र मे महावीर और पार्श्वनाथ की परम्परा के मूलभूत अन्तर चातुर्याम और पचयाम के तथा सचेल और अचेल के

प्रश्नो को लेकर विस्तृत चर्चा है।[८५] श्रमण केशी और गौतम के बीच हुई इस चर्चा से इतना तो स्पष्ट रूप से फलित होता है कि पार्श्व चातुर्याम धर्म के साथ-साथ सचेल धर्म का प्रतिपादन करते थे। चातुर्याम तथा पचयाम तथा सचेल और अचेल के विवाद के अतिरिक्त केशी और गौतम के बीच हुई इस सवाद मे अनेक आध्यात्मिक प्रश्नो की भी चर्चा की गयी थी जिसमे मुख्य रूप से ५ इन्द्रियो, ४ कषायो, मन और आत्मा का सयमन तथा तृष्णा का उच्छेद किस प्रकार सभव है यह समस्या उठायी गयी थी।[८६] श्रमण केशी के द्वारा उठाये गये ये प्रश्न इस बात को सूचित करते है कि पार्श्व की परम्परा मे भी आत्मा, मन और इन्द्रियो के सयम तथा तृष्णा और कषायो के उन्मूलन पर गम्भीर रूप से चिन्तन होता था। इन सब सूचनाओ के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि सत् का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होना, पचास्तिकाय की अवधारणा, अष्ट प्रकार की कर्म ग्रन्थियाँ, शुभाशुभ कर्मों के शुभाशुभ विपाक, कर्म-विपाक के कारण चारो गतियो मे परिभ्रमण तथा सामायिक, सवर, प्रत्याख्यान, निर्जरा, व्युत्सर्ग आदि सम्बन्धी अवधारणाये पार्श्वापत्य परम्परा मे स्पष्ट रूप से उपस्थित थी और उन पर विस्तार से तथा गम्भीरता पूर्वक चर्चा होती थी। महावीर की परम्परा मे ये सभी तत्त्व पार्श्वापत्य परम्परा से गृहीत होकर विकसित हुए है।

## महावीर और पार्श्व की परम्परा का अन्तर

यद्यपि आज हम पार्श्व और महावीर दोनो को एक ही धर्म परम्परा का मानते है, किन्तु वास्तविकता यह है कि पार्श्व और महावीर की धार्मिक आचार परम्पराओ मे पर्याप्त अन्तर था। साथ ही यह भी सत्य है कि एक ओर महावीर की परम्परा ने पार्श्व की परम्परा से आचार और दर्शन दोनो ही क्षेत्रो मे काफी कुछ ग्रहण किया तो दूसरी ओर उसने पार्श्व की परम्परा के अनेक आचार नियमो को परिवर्तित भी किया है। उपलब्ध आगम साहित्य के आधार पर यह ज्ञात होता है कि महावीर ने पार्श्व की परम्परा मे निम्न सशोधन किये थे।

**सचेल-अचेल का प्रश्न**—जहाँ पार्श्व सचेल परपरा के पोषक

है वहाँ महावीर अचेल परपरा के पोषक है। उत्तराध्ययन सूत्र के केशी गौतम सवाद मे, महावीर को अचेल धर्म का और पार्श्व को सचेल धर्म का प्रतिपादक कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि पार्श्व अपने श्रमणो को अन्तर-वासक और उत्तरीय रखने की अनुमति देते थे। उत्तराध्ययन सूत्र मे पार्श्व की वस्त्र-व्यवस्था के सन्दर्भ मे 'सन्तरूत्तरो' शब्द आया है। श्वेताम्बर परम्परा के आचार्यों ने इसका अर्थ विशिष्ट मूल्यवान् और बहुरगी वस्त्र किया है,[87] किन्तु यह बात उन शब्दो के मूल अर्थ से सगति नही रखती। यदि हम इन शब्दो के मूल अर्थों को देखे तो इनका अर्थ किसी भी स्थिति मे रङ्गीन बहुमूल्य वस्त्र नही होता है। इनका स्पष्ट अर्थ है—अन्तरवासक और उत्तरीय। इससे ऐसा प्रतिफलित होता है कि पार्श्व की परम्परा के साधु एक अन्तर-वासक और एक उत्तरीय अथवा ओढने का वस्त्र रखते थे। पालि त्रिपिटक साहित्य मे निर्ग्रन्थों को एक शाटक कहा गया है।[88] उत्तराध्ययन में महावीर की परम्परा को अचेल कहा गया है। अत इन एक शाटक निर्ग्रन्थो को महावीर की परम्परा का मानना उचित नही लगता है। पालि त्रिपिटक एक-शाटक निर्ग्रन्थो के चातुर्याम सवर से युक्त होने की बात भी कहता है अत एक शाटक निर्ग्रन्थो को पार्श्व की परपरा से जोडना अधिक युक्ति सगत लगता है यद्यपि त्रिपिटक में चातुर्याम का उल्लेख 'निगण्ठ-नातपुत्त' अर्थात् महावीर से सबधित है, किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि त्रिपिटककार महावीर और पार्श्व की परम्परा के अन्तर के सबन्ध मे स्पष्ट नही थे। यदि हम इन निर्ग्रन्थो को पार्श्व की परम्परा का अनुयायी मानें तो ऐसा लगता है कि वे एक वस्त्र रखते थे। यहाँ यह समस्या उत्पन्न हो सकती है कि या तो त्रिपिटक मे उल्लिखित निर्ग्रन्थ पार्श्व की परपरा के नही थे और यदि वे पार्श्व की परम्परा के थे, तो त्रिपिटक के एक शाटक के उल्लेख मे और उत्तराध्ययन के सन्तरूत्तर के उल्लेख मे सगति कैसे बैठायी जायेगी ? मेरी दृष्टि मे सामान्यतया पार्श्वापत्य श्रमण धारण तो एक ही वस्त्र करते थे, किन्तु वे एक वस्त्र ओढने के लिए अपने पास रखते होगे जिसका उपयोग सर्दी मे करते होगे। आचाराग मे महावीर को और समवायाग मे सभी जिनो को एक वस्त्र लेकर दीक्षित होने का जो सकेत है वह सभवत पार्श्वनाथ

की परम्परा से सवधित है।[९०] जैन धर्म की श्वेताम्वर परम्परा मे जो वस्त्रपात्र का विकास हुआ है वह मूलत पार्श्वापत्य श्रमणो के महावीर के सघ मे मिलने के कारण ही हुआ होगा।

यह स्पष्ट है कि महावीर की पूर्ववर्ती परम्पराओ मे जहाँ पार्श्व की निर्ग्रन्थ परपरा एक वस्त्र या दो वस्त्रो का विधान करती है वहाँ आजीवको की परपरा, जिसमे महावीर के समकालीन मखलिपुत्र गोशाल थे, अचेलता ( नग्नता ) का प्रतिपादन कर रही थी। मुझे ऐसा लगता है कि महावीर ने सर्वप्रथम तो पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुसार एक वस्त्र लेकर दीक्षा ग्रहण की होगी, जिसकी पुष्टि आचाराग प्रथम श्रुतस्कन्ध से होती है, किन्तु एक ओर पार्श्वापत्यो की आचार सवधी शिथिलताओ या सुविधावाद को तथा दूसरी ओर आजीवक श्रमणो की कठोर तप साधना को देखकर वस्त्र त्यागकर आगे उन्होने अचेल परम्परा का प्रतिपादन किया। फिर भी पार्श्वापत्य परम्परा के साथ उनका वशानुगत सम्बन्ध तो था ही, अत वे पार्श्वापत्य परम्परा से अधिक दूर नही रह सके। अनेक पार्श्वापत्यो का उनकी परम्परा मे सम्मिलित होना यही सूचित करता है कि महावीर और पार्श्व की परम्परा मे प्रारम्भ मे जो कुछ दूरी निर्मित हो गयी थी वह बाद मे पुन समाप्त हो गयी और सभव है कि महावीर ने कठोर आचार का समर्थन करते हुए भी अचेलता के प्रति अधिक आग्रह नही रखा हो। आचाराग प्रथम श्रुतस्कन्ध मे ही एक, दो और तीन वस्त्रो की अनुमति सचेल परम्परा के प्रति उनकी उदारता का सबसे बडा प्रमाण है।[९१]

**चातुर्याम और पचमहाव्रत का विवाद**—महावीर और पार्श्व की परम्परा का दूसरा महत्त्वपूर्ण अन्तर चातुर्याम धर्म और पचमहाव्रत धर्म का है। ऋषिभाषित, उत्तराध्ययन, समवायाग और परवर्ती निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि आदि मे पार्श्व को चातुर्याम धर्म का प्रतिपादक कहा गया है।[९२] जबकि महावीर को पचमहाव्रतो का प्रतिपादक कहा है—समवायाग मे पार्श्व के निम्न चातुर्यामो का उल्लेख—सर्वप्राणातिपात विरमण, सर्वमृषावादविरमण, सर्वअदत्तादान विरमण और सर्ववहिर्धादान विरमण। सभी टीकाकारो ने वहिर्धादान का तात्पर्य परिग्रह के त्याग से लिया है। इस विवरण से यह फलित होता है कि पार्श्व की परपरा मे ब्रह्मचर्य का स्वतन्त्र स्थान नही था, यद्यपि

सभी विचारक यह मानते है कि परिग्रह के त्याग मे ही ब्रह्मचर्य निहित था। क्योकि विना ग्रहण किये स्त्री का भोग सभव नही था। यद्यपि इस कथन मे कुछ सत्यता है, क्योकि प्राचीन काल मे स्त्री को सम्पत्ति माना जाता था और सम्पत्ति के त्याग मे स्त्री का त्याग भी हो जाता था। अत पार्श्व ने स्वतन्त्र रूप से ब्रह्मचर्यव्रत की व्यवस्था करना आवश्यक नही समझी, किन्तु सूत्र-कृताग मे उपलब्ध सूचना से ज्ञात होता है कि कुछ पार्श्वापत्य परि-ग्रह के अन्तर्गत स्त्री के त्याग का एक गलत अर्थ लगाने लगे थे। वे यह मानने लगे थे कि यद्यपि स्त्री को रखने का निषेध किया गया है किन्तु उनके भोग का निषेध नही किया गया है। अत कुछ पार्श्वा-पत्य श्रमण (पासत्य) यहां तक मानने लगे थे कि यदि कोई स्त्री स्वेच्छा से अपनी कामवासना की पूर्ति के लिये श्रमण से निवेदन करती है तो उसकी वासना पूर्ति कर देने मे ठीक उसी प्रकार कोई दोष नही है, जिस प्रकार किसी के पके हुए फोडे को चीरकर उसका मवाद निकाल देने मे कोई दोष नही है।[०३] यद्यपि यहा 'पासत्थ' का अर्थ पार्श्व के अनुयायी न होकर पाश मे स्थित अर्थात् शिथिलाचारी भी हो सकता है। फिर भी महावीर को ब्रह्मचर्य का स्वतन्त्र रूप मे विधान करने के पीछे ऐसे ही कारण रहे होगे। सूत्रकृताग मे महावीर की स्तुति के प्रसग मे 'से वारिया इत्थि सराइभत्त' का उल्लेख हुआ है।[०४] इसका तात्पर्य यह है कि महावीर ने स्त्री और रात्रि भोजन का वारण किया अर्थात् त्याग किया। किन्तु इसका एक अर्थ यह भी हो सकता है कि उन्होंने स्त्री और रात्रि-भोजन से लोगो को विरत किया, और यदि हम इसका यह अर्थ लेते हैं तो ऐसा लगता है कि महावीर ने स्पष्ट रूप से स्त्री के भोग का निषेध किया था, जो पूर्व परपरा मे स्पष्ट रूप से निषेधित नही था।

रात्रि भोजन का निषेध—यह भी माना जाता है कि महावीर ने रात्रि-भोजन का पृथक्‌रूप से निषेध किया। दशवैकालिक मे रात्रि-भोजन को भी पच महाव्रतो के समान ही महत्व देकर एक छठे व्रत के रूप मे स्थापित किया गया है।[०५] पार्श्व की परपरा मे रात्रि भोजन प्रचलित था या नही इस सबध मे हमे कोई प्रमाण उप-लब्ध नही है। अत मात्र हम यही कह सकते हैं कि महावीर ने रात्रि

भोजन का भी स्पष्ट रूप से निषेध किया, हो सकता है कि पार्श्व की परंपरा मे इस सम्बन्ध मे स्पष्ट निषेध नही रहा हो।

**सप्रतिक्रमण धर्म**—महावीर और पार्श्व की परपरा का मुख्य अन्तर जो कि प्राचीन आगम साहित्य मे उपलब्ध है, वह यह है कि पार्श्व की परपरा मे प्रात काल और साय काल प्रतिक्रमण करना अनिवार्य नही था। महावीर ने अपने सघ मे यह व्यवस्था की थी कि प्रत्येक साधु को, चाहे उसने किसी दोष का सेवन किया हो या न किया हो, प्रतिदिन प्रात काल और सायकाल प्रतिक्रमण करना ही चाहिये। जबकि पार्श्व की परपरा के सबध मे हमे केवल इतनी ही जानकारी मिलती है कि पार्श्वापत्य श्रमण यदि किसी दोष का सेवन होता था तभी प्रतिक्रमण या प्रायश्चित्त करते थे। इसका तात्पर्य यही है कि यद्यपि दोषो के सेवन से होने वाले पाप के प्रायश्चित्त के लिये प्रतिक्रमण करना तो दोनो को ही मान्य था किन्तु महावीर साधक को अधिक सजग रहने के लिए इस बात पर अधिक बल देते थे प्रत्येक साधक को प्रात काल और सायकाल अपने दिन या रात्रि के क्रिया-कलापो पर चिन्तन करे और यह देखे कि उसके द्वारा किसी दोष का सेवन हुआ है या नही। अत प्रतिक्रमण की अनिवार्यता पार्श्व की परपरा मे महावीर का एक सशोधन था। सूत्रकृताग और भगवती मे महावीर के धर्म को सप्रतिक्रमण धर्म कहा गया है।[96]

**सामायिक और छेदोपस्थापनीय चरित्र का प्रश्न**—पार्श्व और महावीर की परपरा मे एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह भी था कि महावीर की परपरा मे सामायिक चारित्र के पश्चात् साधक को योग्य पाये जाने पर ही छेदोपस्थापनीयचारित्र दिया जाता था।[97] सामायिक चारित्र मे साधक समभाव की साधना के साथ-साथ सावद्य योग अर्थात् पाप-कारी प्रवृत्तियो का त्याग करता था। जबकि छेदोपस्थापनीय चारित्र मे वह महाव्रतो को ग्रहण करता था और सघ मे उसकी वरीयता निश्चित कर दी जाती थी, किन्तु यदि वह अपने व्रत को भग करता या किसी दोष का कोई सेवन करता तो उसकी इस वरीयता को कम (छेद) भी किया जा सकता था। मुझे ऐसा लगता है कि महावीर ने

अपनी व्रत व्यवस्था मे ब्रह्मचर्य की अनिवार्यता पर और सम्पूर्ण परिग्रह के त्याग के रूप मे वस्त्र त्याग पर भी जो वल दिया था उसके कारण यह आवश्यक हो गया था कि साधक की योग्यताओ को परखने के पश्चात् ही उसे स्थायी रूप से सघ मे स्थान दिया जाये। क्योकि नग्न रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करना साधना के क्षेत्र मे परिपक्वता आये विना सभव नही था। अत साधना के क्षेत्र मे दो प्रकार के श्रमणो की व्यवस्था की गयी थी एक सामायिक चारित्र से युक्त और दूसरे उपस्थापनीय चारित्र से युक्त। महावीर की समकालीन बौद्ध परपरा मे भी प्रव्रज्या और उपसम्पदा को अलग-अलग किया गया था। प्रथमत साधक को कुछ समय परीक्षण के तौर पर सघ मे रखा जाता था, फिर उसे योग्य सिद्ध होने पर अन्तिम रूप से दीक्षित किया जाता था। इस प्रकार महावीर ने छेदोपस्थापनीय चारित्र की व्यवस्था करके पार्श्व की परपरा मे एक सशोधन कर दिया था।

### अन्य अन्तर

पार्श्व और महावीर की परपराओ के अन्य प्रमुख अन्तरो मे औद्देशिक, राजपिण्ड, मासकल्प और पर्युषण सवधी अन्तर भी माने गये है। जैन परपरा मे जिन १० कल्पो की अवधारणा है उन कल्पो मे निम्न ६ कल्प अनवस्थित माने गये है। अनवस्थित का तात्पर्य यह है कि सभी तीर्थंकरो की आचार व्यवस्था मे उन्हे स्थान नही दिया जाता है। ये अनवस्थित कल्प निम्न है—(१) अचेलता, (२) प्रतिक्रमण, (३) औद्देशिक, (४) राजपिण्ड, (५) मासकल्प और (६) पर्युषण।[०४]

इनमे से अचेलता और प्रतिक्रमण की चर्चा पूर्व मे कर चुके है। अवशिष्ट औद्देशिक, राजपिण्ड, मासकल्प और पर्युषण की चर्चा आगे करेंगे।

**औद्देशिक**—पार्श्व की परपरा मे श्रमण के लिए वनाये गये आहार का ग्रहण करना वर्जित नही था, जवकि महावीर ने श्रमणो के लिए वनाये गये आहार को ग्रहण करना निषिद्ध ठहराया। इस प्रकार औद्देशिक अर्थात् श्रमण के निमित्त वने भोजन को ग्रहण किया जाये या न किया जाये इस सवध मे पार्श्व और महावीर की परपरायें भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रखती थी।

**राजपिण्ड**—पार्श्व की परपरा के श्रमण राजा के यहाँ का अथवा राजा के लिए वना हुआ भोजन ग्रहण कर लेते थे, जवकि महावीर ने अपने श्रमणो के लिए राजपिण्ड का ग्रहण करना निषिद्ध कर दिया।

**मासकल्प**—पार्श्व की परपरा के श्रमणो के लिए यह नियम नही था कि वे चातुर्मास के अतिरिक्त किमी एक स्थान पर एक मास से अधिक न ठहरें अर्थात् वे अपनी इच्छा के अनुरूप किसी स्थान पर एक मास से अधिक ठहर सकते थे, जवकि महावीर ने अपने श्रमणो के लिए चातुर्मास के पश्चात् किसी स्थान पर एक मास से अधिक ठहरना निषिद्ध कर दिया था।

**पर्यु षण**—पर्यु षण का अर्थ वर्षाकाल मे एक स्थान पर रहना है। पार्श्व की परपरा मे श्रमणो के लिए वर्षाकाल मे एक स्थान पर रहना भी आवश्यक नही था। वे इस वात के लिए वाध्य नही थे कि वर्षाकाल मे चार मास तक एक ही स्थान पर रहे। जवकि महावीर ने अपने श्रमणो को आषाढ पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा तक एक ही स्थान पर रहने के स्पष्ट निर्देश दिये थे।

पार्श्व और महावीर की परम्परा के उपर्युक्त सामान्य अन्तरो के अतिरिक्त मुनियो के आचार सम्बन्धी नियमो को लेकर ही और भी अनेक अन्तर देखे जाते है। भगवतीसूत्र के अनुसार कालस्यवैंशिक-पुत्र नामक पार्श्वापत्य अनगार ने महावीर के सघ मे प्रविष्ट हो निम्न विशेष साधना की थी। उन्होने पच महाव्रत और सप्रतिक्रमण धर्म को स्वीकार करने के साथ-साथ नग्नता, मुण्डितता, अस्नान, अदन्तधावन, छत्ररहित होना, उपानह (जूते) रहित होना, भूमिशयन, फलकशयन, काष्ठशयन, केशलोच, ब्रह्मचर्य परगृहप्रवेश अर्थात् भिक्षार्थ लोगो के घरो मे जाना, को भी स्वीकार किया था। साथ ही लब्ध-अलब्ध, ऊँच-नीच, ग्राम कण्टक एव बाइस परीषहो को भी सहन किया था—

तए ण से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवते वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता चाउज्जामाओ धम्माओ पचमहव्वइय सपडिक्कमण धम्म उवसपज्जिता ण विहरति।

तए ण से कालासवेसियपुत्ते अणगारे बहूणि वासाणि सामण्ण-परियाग पाउणइ, पाउणित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुडभावे अण्हाणय अदतवणय अच्छत्तय अणोवाहणय भूमिसेज्जा फलसेज्जा

कट्ठसेज्जा केसलोओ वभचेरवासो परघरप्पवेसो लद्धावलद्धी उच्चावया गामकटगा वावीस परिसहोवसग्गा अहियासिज्जति। (भगवती १।९।४३२-३३)

उपर्युक्त विवरण से यह फलित होता है कि पार्श्व की परम्परा के भिक्षुओ मे वस्त्र पहनने के साथ-साथ स्नान करना, दन्तधावन करना, छाता रखना, जूता पहनना और कोमल शय्या पर शयन करना आदि प्रचलित था, क्योकि कालस्यवेशिकपुत्र को महावीर की परम्परा मे दीक्षित होने पर इन सबका त्याग करना पडा था। इसी प्रकार केशलोच, और ब्रह्मचर्य भी महावीर के परम्परा की विशिष्टता थी, क्योकि कालस्यवेशिकपुत्र ने केशलोच और ब्रह्मचर्य को भी स्वीकार किया था। सम्भावना यह लगती है कि पार्श्व की परम्परा के मुनि अन्य परम्पराओ के श्रमणो की तरह शिर मुण्डन करवाते होगे। मेरी दृष्टि मे केशलोच आजीवको और महावीर की परम्परा की ही विशिष्टता थी। ब्रह्मचर्य के सम्वन्ध मे महावीर की परम्परा मे जो विशिष्टता थी, उसकी चर्चा हम पूर्व में कर ही चुके है। इसी प्रसग मे पर-गृह प्रवेश, प्राप्ति-अप्राप्ति, ऊँच-नीच और ग्रामकण्टक की भी चर्चा है, हमे इनके अर्थ समझने होगे। परगृह प्रवेश की साधना का तात्पर्य मेरी दृष्टि मे भिक्षा के लिये गृहस्थो के घरो पर जाना है। जैसी कि हमने पूर्व मे चर्चा की है, पार्श्व की परम्परा मे निमत्रित भोजन स्वीकार करते थे, अत उन्हे भिक्षार्थ घर-घर भटकना नही पडता था, न उन्हे भिक्षा के प्राप्ति-अप्राप्ति की कोई चिन्ता होती थी, क्योकि जब निमन्त्रित भोजन ग्रहण करना है तो अलाभ का कोई प्रश्न ही नही उठता है। इसी प्रकार उच्चावया का अर्थ ऊँच-नीच होना चाहिए। वस्तुत जब निमत्रित भिक्षा स्वीकार की जायेगी तो सामान्यतया जो सम्पन्न परिवार हैं उन्ही के यहाँ का निमत्रण मिलेगा इसलिये निमत्रित भोजन स्वीकार करने वाली परम्परा को धनी-निर्धन अथवा ऊँच-नीच कुलो मे भिक्षा के लिये जाना नही होता। महावीर की परपरा मे चूँकि अद्देशिक भिक्षा का नियम था, अत उनके श्रमणो को सभी प्रकार के कुलो अर्थात् धनी-निर्धन या उच्च-निम्न कुलो से भिक्षा लेनी होती थी।

ग्रामकण्टक का अर्थ टीकाकारो ने कठोर शब्द सहन करना, ऐसा

श्रमण भी निर्ग्रन्थ कहलाते थे, मात्र इसी आधार पर हम उन्हे पार्श्वनाथ की परम्परा का मान सकते है। पार्श्व के अनुयायियो के लिए आगम साहित्य मे हमे 'पामावच्चिज्ज' (पार्श्वापत्यीय) और पासत्थ (पार्श्वस्थ) इन दो शब्दो का उल्लेख मिलता है। यद्यपि दोनो ही शब्दो का अर्थ पार्श्व के अनुयायी हो सकता है, किन्तु हम यह देखते है कि जहाँ पार्श्व के अनुयायियो को सम्मानजनक रूप मे प्रस्तुत करने का प्रश्न आया, वहाँ 'पासावच्चिज्ज' शब्द का प्रयोग हुआ[99] और जहाँ उन्हें हीन रूप मे प्रस्तुत करने का प्रमङ्ग आया है वहा उनके लिये 'पासत्थ' शब्द का प्रयोग हुआ है[100] 'पासत्थ' शब्द का सस्कृत रूप पार्श्वस्थ होता है जिसका सामान्य अर्थ 'पार्श्व के सघ मे स्थित' ऐसा हम कर सकते हैं किन्तु जैन परपरा मे आगमिक काल से ही पार्श्वस्थ (पासत्थ) शब्द शिथिलाचारी साधुओ के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। सूत्रकृताग मे 'पामत्थ' शब्द शिथिलाचारी के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।[101] आज जैन श्रमण के लिये सबसे अपमानजनक शब्द यदि कोई है तो वह उसे 'पासत्था' कहना हैं। व्याकरणशास्त्र की दृष्टि से प्राकृत पासत्थ का सस्कृत रूप 'पाशस्थ' अर्थात् पाश मे वधा हुआ मानकर हम उसका अर्थ शिथिलाचारी या दुराचारी भी कर सकते हैं।[102] किन्तु उसका सस्कृत रूप 'पार्श्वस्थ' मानने पर उसका स्पष्ट अर्थ दुराचारी य शिथिलाचारी श्रमण ऐमा नही होता है। पार्श्वस्थ शब्द का तात्पर्य मात्र पार्श्व या बगल मे स्थित होता है।[103] यद्यपि 'पार्श्व मे स्थित' होने का अर्थ कुछ हटकर भी हो सकता है। इसी आधार पर सामान्यतया पार्श्वस्थ का अर्थ सुविधावादी या शिथिलाचारी किया जाने लगा होगा।

उपलब्ध आगमिक आधारो से यह एक सुनिश्चित सत्य प्रतीत होता है कि पार्श्व की परपरा के श्रमण महावीर के युग मे अपने आचार नियमो मे पर्याप्त रूप से सुविधाभोगी थे। अत कठोर आचार मार्ग का पालन करने वाले महावीर के श्रमणो को वे शिथिलाचारी लगते होगे और इसीलिये पार्श्वस्थ शब्द अपने मूल अर्थ को छोडकर शिथिलाचारी श्रमण के लिए प्रयुक्त होने लगा।

चारित्रसार में कहा गया है कि जो मुनि वस्तिकाओ मे रहते हैं, उपकरणो को ग्रहण करते हैं और मुनियो के समीप रहते है उन्हे

पार्श्वस्थ कहते हैं। [101] इस व्याख्या से यह तो स्पष्ट होता है कि जो श्रमणो के निकट रहते है वे पार्श्वस्थ है। साथ ही यह भी कि पार्श्वस्थो का आचार अन्य श्रमणो की अपेक्षा निम्न होता था। भगवती-आराधना और मूलाचार मे पार्श्वस्थ को शिथिलाचारी मुनि के रूप मे ही ग्रहण किया गया है। भगवतीआराधना मे कहा गया है कि कुछ मुनि जव इन्द्रियरूपी चोरो से और कपायरूपी हिंमको से तथा आत्मा के गुणो का घात करने वालो से पकडे जाते है तो वे साधु का पद त्यागकर पार्श्वस्थो के पास चले जाते हैं। भगवतीआराधना और उसकी विजयोदया टीका मे कहा गया है कि 'अतिचार रहित सयम का स्वरूप जानकर भी जो उसमे प्रवृत्ति नही करता है' किन्तु सयम मार्ग के समीप ही रहता है यद्यपि वह एकात से असयमी नही है परन्तु निरतिचार सयम का पालन भी नही करता है इसलिए उसे पार्श्वस्थ कहते हैं ? पुन जो उत्पादन और एपणा दोप सहित आहार का ग्रहण करते हैं, एक ही वस्तिका मे रहते है, एक ही सस्तर मे मोते हैं, एक ही क्षेत्र मे निवास करते है, गृहस्थो के घर अपनी वैठक लगाते है, सूई-कैंची आदि वस्तुओ को ग्रहण करते है तथा सीना, धोना, रगना आदि कार्यों मे तत्पर रहते है ऐसे मुनियो को पार्श्वस्थ कहते हैं। पुन जो अपने पास क्षार-चूर्ण, सोहाग-चूर्ण, नमक, घी वगैरह पदार्थ कारण न होने पर भी रखते है उन्हे पार्श्वस्थ कहा जाता है। [105] भगवतीआराधना टीका की यह व्याख्या इस वात को ही स्पष्ट करती है मुनि आचार नियमो मे ही जो शिथिल होते है वे पार्श्वस्थ कहे जाते हैं। यह स्पष्ट है कि पार्श्व की परपरा के मुनि यह सब कार्य करते थे और महावीर के अनुयायी इन कार्यो को श्रमणआचार के अनुरूप नही मानते थे। इसी कारण आगे चल कर शिथिलाचारी मुनियो के अर्थ मे ही पार्श्वस्थ शव्द का प्रयोग होने लगा।

किन्तु हमे यहाँ यह भी स्मरण रखना होगा कि अर्धमागधी आगम साहित्य मे जहाँ स्पष्ट रूप से पार्श्व की परपरा के श्रमणो का निर्देश है वहाँ उन्हे 'पासत्थ (पार्श्वस्थ) नही कह कर पासावच्चिज्ज (पार्श्वापत्यीय) ही कहा गया है। जबकि जहाँ शिथिलाचारी श्रमणो का उल्लेख है वहा सदैव पासत्थ शब्द का प्रयोग है। यद्यपि पुलाक,

बकुश, कुशील आदि पाच प्रकार के निर्ग्रन्थो की चर्चा मे पार्श्वस्थ का उल्लेख नही है,[100] किन्तु सूत्रकृताग, भगवती एव ज्ञाताधर्म-कथा मे पार्श्वस्थ, कुशील और स्वच्छन्द को पर्यायवाची बताया गया है।[107] अत स्वाभाविक रूप से यह विचार उपस्थित होता है कि हम पार्श्वस्थ और पार्श्वापत्य के बीच जो सम्बन्ध जोड रहे हैं वह मात्र काल्पनिक नही है। जब तक इस बात का कोई ठोस प्रमाण प्राप्त न हो कि पार्श्वस्थ और पार्श्वापत्य एक ही थे, तब तक दोनो को एक मानने का अत्यधिक आग्रह तो नही रखा जा सकता है। फिर भी पार्श्वापत्यो के आचार सम्बन्धी शिथिल नियम हमे दोनो को एक मानने के लिए विवश करते है। पार्श्वापत्यो और पार्श्वस्थो को एक दूसरे से सम्बन्धित मानने का हमारे पास एक ही आधार है वह यह कि ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे काली आदि को एक ओर पार्श्व की शिष्याये कहा गया है वही दूसरी ओर उनके शिथिला-चारी (पासत्थ) होने का भी उल्लेख है।[108]

## पार्श्वापत्य श्रमण-श्रमणिया और गृहस्थ उपासक-उपासिकाएं

श्वेताम्बर आगम साहित्य मे हमे पार्श्व और उनके अनुयायियो के सबध मे अनेक उल्लेख उपलब्ध होते है, जो अधिकाश ऐतिहासिक हैं।

ज्ञातासूत्र मे आमलकप्पा, श्रावस्ती, हस्तिनापुर, काम्पिल्य, वारा-णसी, चम्पा, नागपुर, साकेत, अरक्खुरी, मथुरा आदि नगरो की अनेक स्त्रियो को पार्श्व द्वारा दीक्षित किये जाने का उल्लेख है। यद्यपि ये कथा-प्रसग कल्पनात्मक होने से ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक नही है, क्योकि इनमे पार्श्व के द्वारा दीक्षित इन सभी स्त्रियो का स्वर्ग की विभिन्न देवियो के रूप मे उत्पन्न होकर वहाँ से महावीर के वन्दनार्थ आने के उल्लेख है तथा इसी सन्दर्भ मे उनके पूर्व-जीवन की चर्चा की गयी है। इसके विपरीत आचाराग, सूत्रकृताग, राजप्रश्नीय, उत्तराध्ययन आदि मे पार्श्वापत्यो के सबध मे जो तथ्यपरक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं उनकी ऐतिहासिकता प्रामा-णिक लगती है। आचाराग मे महावीर के माता-पिता को पार्श्व की परपरा का अनुयायी कहा गया है।[109] सूत्रकृताग मे उदकपेढाल नामक पार्श्वापत्य श्रमण का उल्लेख है।[110] उदकपेढाल सबधी विव-

रण हमे ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक ही लगता है। उदकपेटाल का गौतम से त्रस शब्द के अर्थ और हिंसा के प्रत्याख्यान के स्वरूप के सबंध मे गम्भीर चर्चा करते हैं। इससे एक ओर पार्श्वापत्यो की सैद्धान्तिक अवधारणाओ का पता चलता है तो दूसरी ओर यह भी ज्ञात होता है कि पार्श्वापत्यो और महावीर के श्रमणो के बीच अनेक दार्शनिक प्रश्नो को लेकर गम्भीर चर्चायें होती थी।

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र मे गांगेय अनगार और महावीर के बीच जीवो की मनुष्य, तिर्यञ्च, नारक और देवगतियो पर तथा लोक की शाश्वता पर चर्चा होती है।[111] भगवतीसूत्र मे ही कालस्यवैशिकपुत्र की महावीर के स्थविर श्रमणो से चर्चा का भी उल्लेख है।[112] उनकी चर्चा का मुख्य विषय सामायिक, प्रत्याख्यान, सयम, सवर, विवेक और व्युत्सर्ग का स्वरूप है। भगवतीसूत्र मे वाणिज्यग्राम मे कुछ पार्श्वापत्य श्रमणो की भगवान् महावीर से चर्चा का भी उल्लेख है।[113] ये पार्श्वापत्य श्रमण महावीर से लोक के स्वरूप के सबध मे चर्चा करते हैं, और महावीर पार्श्व की मान्यताओ के आधार पर ही उन्हे लोक का स्वरूप स्पष्ट करते है। महावीर के उत्तरो से सन्तुष्ट होकर वे महावीर का पञ्चमहाव्रतात्मक सप्रतिक्रमण धर्म स्वीकार करते है। इसी प्रकार भगवतीसूत्र मे ही जब महावीर अपना तेईसवाँ वर्षावास, श्रावस्ती नगर मे सपूर्ण कर राजगृही आये थे, उसी समय राजगृह के निकट तुगिया नगरी मे पार्श्वापत्य स्थविर पाँच सौ अनगारो के साथ निवास कर रहे थे।[114] तुगिया के श्रमणोपासक इन स्थविरो को वन्दन करने के लिए जाते है और उनसे सयम और तप के फल के सबध मे चर्चा करते हैं। पार्श्वापत्य श्रमणो ने इनका जो प्रत्युत्तर दिया था गौतम महावीर से उसकी प्रामाणिकता के सबध मे जानना चाहते हैं। इस सबध मे महावीर कहते हैं कि पार्श्वापत्य स्थविरो ने जो उत्तर दिया है वह यथार्थ और पूर्ण सत्य है।[115] इस चर्चा प्रसग से हमे दो बातो की जानकारी मिलती है। प्रथम तो यह कि महावीर के गृहस्थ उपासक पार्श्वापत्य परपरा के श्रमणो के यहाँ जाते थे और तत्त्व-जिज्ञासा को लेकर उनसे प्रश्नोत्तर भी करते थे। दूसरे यह कि महावीर अनेक सदर्भो मे पार्श्वनाथ की तात्त्विक और दार्शनिक मान्यताओ को यथार्थ मानकर स्वीकार करते थे।

राजप्रश्नीय मे श्वेताम्बिका के राजा प्रदेशी को पार्श्वापत्यीय श्रमण केशिकुमार के द्वारा उपदेश दिये जाने का भी उल्लेख है।[११६] उत्तराध्ययन सूत्र मे भी पार्श्वापत्यीय श्रमण केशी और महावीर के प्रधान शिष्य गौतम के बीच हुए संवाद का उल्लेख प्राप्त होता है। राजप्रश्नीय और उत्तराध्ययन के उल्लेख से ऐसा लगता है कि केशी पार्श्वापत्य परम्परा के एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। कथाओ मे केशी को पार्श्व की परपरा का चतुर्थ पट्टधर कहा गया है। पार्श्वनाथ की परम्परा मे प्रथम पट्टधर शुभदत्त थे। उनके पश्चात् आचार्य हरिदत्त हुए। तीसरे पट्टधर आर्य समुद्र और चौथे पट्टधर आर्य केशी हुए।[११७] यद्यपि इस मे आर्य समुद्र और हरिदत्त ऐसे नाम है जिनकी ऐतिहासिकता विवादास्पद हो सकती है किन्तु केशी की ऐतिहासिकता के सन्दर्भ मे सन्देह करने का हमे कोई कारण नही लगता है। केशी की ज्ञान सामर्थ्य और बुद्धि गाम्भीर्य का पता राजप्रश्नीय मे राजा प्रदेशी से तथा उत्तराध्ययन मे गौतम से हुई विचार-चर्चा मे लग जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से त्रिपिटक साहित्य का पयासी सुत्त[११८] और राजप्रश्नीय के पएसी सबधी विवरण महत्वपूर्ण रूप से तुलनीय है और वे उस घटना की ऐतिहासिकता को भी प्रमाणित करते है। यह पयासी या पएसी प्रसेनजित् ही होना चाहिए, जो ऐतिहासिक व्यक्ति है।

यह अलग बात है कि बौद्धो ने इसे अपने ढग से मोड लिया है जबकि राजप्रश्नीय मे इसे यथावत् रखा गया है। ऐसा लगता है कि उस काल मे यह कथाप्रसग बहुत चर्चित रहा होगा जिसे दोनो परपराओ ने ग्रहण कर लिया था।

बौद्ध परपरा अनात्मवादी थी, इस कारण आत्मा की नित्यता को सिद्ध करना उनके लिए इतना अधिक महत्वपूर्ण नही था। यद्यपि उन्होने अपने पुनर्जन्म की सिद्धान्त की पुष्टि के लिये अपने ढग से इसे मोडने का प्रयत्न किया है। जबकि जैनो ने इसे आत्मवाद मे विश्वास रखने के कारण यथावत् रखा है इससे इतना निश्चित होता है कि पार्श्वापत्यो की एक सुव्यवस्थित परपरा महावीर और बुद्ध के काल तक चली आ रही थी।

इन उल्लेखो के अतिरिक्त आवश्यकचूर्णि मे भी पार्श्वापत्य

श्रमणो के उल्लेख हमे मिलते हैं।[119] आवश्यकचूर्णि की सूचना के अनुसार गोशालक का कूपनख नामक एक कुम्भकार की शाला मे पार्श्वापत्य श्रमण मुनिचन्द्र से मिलने का उल्लेख है। गोशालक उनकी आलोचना भी करता है। इसी प्रकार आवश्यकचूर्णि मे ही पार्श्वापत्य श्रमण नन्दिसेन का उल्लेख मिलता है।[120] ऐसे भी पार्श्वापत्य श्रमणो के उल्लेख है जो श्रमणाचार से शिथिल होकर निमित्त शास्त्र आदि के द्वारा अपनी आजीविका चलाते थे। ऐसे निमित्तवेत्ता पार्श्वापत्यो मे उत्पल का उल्लेख आवश्यकनिर्युक्ति एव आवश्यकचूर्णि मे हमे मिलता है।[121] आवश्यकचूर्णि के उल्लेख के अनुसार शोण कलिन्द, कर्णिकार, अछिद्र, अग्निवैशम्पायन और अर्जुन ये छह निमित्तवेत्ता पार्श्वापत्य परपरा के ही थे।[122] अर्जुन का उल्लेख हमे भगवतीसूत्र मे भी मिलता है, भगवतीसूत्र मे अर्जुनगोतमीयपुत्र को तीर्थङ्कर पार्श्व का अनुयायी बताया है, जो आगे चलकर गोशालक का अनुयायी हो जाता है।[123] गोशालक द्वारा अर्जुन का शरीर ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है।[124] इससे ऐसा फलित होता है कि अर्जुन पहले पार्श्व की परम्परा का अनुयायी था बाद मे आजीवक परम्परा का अनुयायी बना। आवश्यकनिर्युक्ति मे सोमा, जयन्ती, विजया और प्रगल्भा नामक ऐसी चार पार्श्वापत्यीय परिव्राजिकाओ के भी उल्लेख मिलते है।[125] इन्होने महावीर और गोशालक को वहाँ के राजकीय अधिकारियो के द्वारा गुप्तचर समझकर पकडे जाने पर छुडवाया था।

इस प्रकार हमे अर्धमागधी आगम साहित्य मे अनेक पार्श्वापत्य श्रमण-श्रमणियो और श्रमणोपासको के उल्लेख प्राप्त होते हैं। जिससे यह भी ज्ञात होता है कि पार्श्वापत्य श्रमण और महावीर के श्रमण एक दूसरे से मिलते थे, तत्त्व-चर्चाये करते थे। यद्यपि अनेक प्रश्नो पर वे परस्पर सहमति रखते थे किन्तु कुछ प्रश्नो पर उनका मतवैभिन्य भी था। फिर भी कठिनाइयो मे वे एक दूसरे को सहयोग देते थे।

**महावीर और पार्श्व की परम्परा के पारस्परिक सम्बन्ध**

सूत्रकृताग और भगवती मे उपलब्ध सन्दर्भो से हमे इस बात के स्पष्ट सङ्केत मिलते हैं कि प्रारम्भ मे पार्श्वापत्यो और महावीर के

श्रमणो मे विरोध था। एक ओर महावीर के अनुयायी पार्श्वापत्यो को शिथिलाचारी मानकर आलोचना करते थे तो दूसरी ओर पार्श्व के अनुयायी महावीर के तीर्थंकर एव सर्वज्ञ होने मे सन्देह करते थे। यहाँ तक कि वे महावीर और उनके श्रमणो के प्रति वन्दन व्यवहार जैसे सामान्य शिष्टाचार के नियमो का पालन भी नही करते थे। भगवतीसूत्र के अनुसार कालस्यवेशीय, गागेय आदि पार्श्वापत्य महावीर के पास जाते है किन्तु विना वन्दन व्यवहार किये ही सीधे उनसे प्रश्न करते है,[126] जब उन्हे इस बात का विश्वास हो जाता है कि महावीर पार्श्व की कुछ मान्यताओ को स्वीकार करते है और उन्हे अपने पूर्ववर्ती तीर्थंकर या जिन के रूप मे स्वीकार करते है तो वे पचयाम एव सप्रतिक्रमण धर्म स्वीकार करके उन्हे वन्दन नमस्कार करते है और उनके सघ मे सम्मिलित हो जाते है। इस बात के भी स्पष्ट सकेत है कि पार्श्व के अनुयायियो मे जहा कुछ महावीर से मिलने के पश्चात् उनके सघ मे सम्मिलित हो जाते है, वहा कुछ महावीर से मिलने के वाद भी अपनी परपरा का त्याग नही करते।[127]

उत्तराध्ययन और राजप्रश्नीय मे पार्श्वापत्यीय श्रमण केशी का उल्लेख हमे जहा एक ओर इस बात का सङ्केत देता है कि महावीर के समय मे पार्श्वापत्यीय श्रमण लोक प्रतिष्ठित थे वही दूसरी ओर यह भी सकेत मिलता है कि पार्श्व की परम्परा के अनेक गृहस्थ और श्रमण महावीर की परपरा मे सम्मिलित हो रहे थे और दोनो परपराओ के बीच एक समन्वय का सेतु भी वनाया जा रहा था। उत्तराध्ययन का केशीगौतमीय नामक तेईसवा अध्ययन इस वात का स्पष्ट प्रमाण है कि किस प्रकार पार्श्व और महावीर के अनुयायी परस्पर मिलकर आपसी विवादो का समन्वय एव समाधान करते थे। आवश्यकचूर्णि मे उल्लेखित घटनाए यद्यपि अनुश्रुति प्रधान है, फिर भी वे इस तथ्य की अवश्य सूचक है कि पार्श्वापत्य श्रमण और गृहस्थ उपासक महावीर और उनके श्रमणो की आपत्ति काल मे सहायता करते थे और दोनो परपराओ मे सवन्ध मधुर थे।

**पार्श्व की परपरा**

वर्तमान काल मे सभी श्रमण-श्रमणियाँ तथा गृहस्थ उपासक या उपासिकायें अपने को तीर्थंकर महावीर की परपरा से सवद्ध मानते हैं।

उपकेशगच्छ के अपवाद को छोडकर आज पार्श्व की परपरा के न तो श्रमण और श्रमणियाँ हैं और न उपासक तथा उपासिकाये। यह निर्विवाद सत्य है महावीर के पश्चात् भी पार्श्वनाथ की परम्परा का स्वतन्त्र रूप से कुछ समय तक अस्तित्व रहा हो, किन्तु हमे ऐसा कोई साहित्यिक एव अभिलेखीय आधार प्राप्त नही होता है, जिसे पार्श्व की परम्परा को महावीर के पश्चात् भी स्वतन्त्र रूप से जीवित रहने के प्रमाणके रूप मे प्रस्तुत किया जा सके। यद्यपि अनुश्रुति के रूप मे उपकेश गच्छ को पार्श्वनाथ की परम्परा से सम्बद्ध माना जाता है। वे अपनी पट्टावली मे भी अपने को सीधे पार्श्वनाथ की परम्परा से जोडते है।[128] किन्तु अनुश्रुति के अतिरिक्त इस तथ्य का कोई प्रमाण नही है। उनके आचार-व्यवहार मे भी ऐसा कोई तथ्य नही है, जो कि महावीर की परम्परा मे पृथक् उनकी पहचान बनाता हो। पार्श्व की स्वतन्त्र परपरा के विलुप्त होने की दो ही स्थितिया हो सकती है या तो पार्श्व के सभी श्रमण-श्रमणियाँ और उपासक सामूहिक रूप से महावीर की परपरा मे सम्मिलित हो गये हो या जिन कुछ लोगो अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को बनाये रखने का प्रयत्न किया हो वे इतने समर्थ न रहे हो कि अपनी परपरा को जीवित बनाये रख सके। फलत धीरे-धीरे उनकी परम्परा समाप्त हो गयी।

अर्धमागधी आगम साहित्य मे जिन पार्श्वापत्यो के उल्लेख हमे मिलते है उनमे से अधिकाश के सम्बन्ध मे यही उल्लेख है कि उन्होने पार्श्व की परम्परा को त्याग कर महावीर की परम्परा को स्वीकार कर लिया। यद्यपि कुछ ऐसे भी उदाहरण है जिनमे परम्परा-परिवर्तन के सकेत नही मिलते। फिर भी ऐसा लगता है कि पार्श्व के अनुयायियो का बहुसख्यक वर्ग महावीर के अनुयायियो के द्वारा पार्श्व को अपना पूर्ववर्ती तीर्थंकर स्वीकार करने के साथ ही उनकी परपरा मे आ गया होगा। जैन धर्म मे श्वेताम्बर परपरा का जो विकास हुआ है हमारी दृष्टि मे उसके पीछे मूलत पार्श्वापत्यो का ही अधिक प्रभाव रहा हो। श्वेताम्बर आगम साहित्य मे छेद-सूत्रो मे जो श्रमणो के आचार सबधी नियम हैं उनको देखने से ऐसा लगता है कि पार्श्वापत्य परपरा के श्रमणो को अपने साथ बनाये

रखने के लिए ही उस प्रकार महावीर की कठोर आचार परंपरा को समाप्त कर दिया गया था। छेदसूत्रो मे श्रमणो के आचार संबंधी नियमो मे क्षुर मुण्डन, छत्रधारण, पात्र, उपानह, चमड़े की थैलियां आदि रखने मे जो विधान पाये जाते है वे निश्चित रूप से पार्श्व की परंपरा से ही सम्बन्धित है।[१२९] क्योंकि महावीर की परम्परा मे यह सब प्रचलित नही था। आज भी श्वेताम्बर जैन श्रमण-श्रमणियां इन सब का उपयोग नही करते है। यह एक सामयिक व्यवस्था ही रही होगी जबकि पार्श्वापत्य परम्परा से अधिकांश श्रमण महावीर की परंपरा के साथ जुड़े होंगे। मात्र यही नहीं हरमन जैकोबी ने इस बात की भी सम्भावना व्यक्त की है कि जैनो मे जो श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायो का मतभेद है, वह मूलतः पार्श्वापत्यो और महावीर के अनुयायियो का मतभेद है। उनके अपने ही शब्दो मे "यद्यपि केशी और गौतम के सम्वाद मे दोनो परम्पराओं के मुख्य मतभेद प्रश्नों को सन्ध्या और वस्त्र के उपयोग-अनुपयोग पर उठाया गया था, किन्तु बिना किसी गम्भीर विवाद के मूलभूत नैतिक आदर्शों की एकरूपता द्वारा इसे सुलझा लिया गया था। यद्यपि दोनों ही परम्पराओं के अपने आग्रह थे। किन्तु दोनो मे कोई विरोध नहीं था। मात्र यही नही पार्श्व की परम्परा के अनुयायी महावीर की व्यवस्था को स्वीकार करते थे। यद्यपि यह कल्पना की जा सकती है कि उन्होंने पञ्च महाव्रतो और सप्रतिक्रमण धर्म को स्वीकार करने के साथ ही साथ कुछ अपनी प्राचीन परम्पराओ को यथावत् बनाये रखा था, विशेष रूप से वस्त्र के उपयोग की परम्परा का, जिसका कि महावीर ने पूर्ण निषेध कर दिया था। इस स्वीकृति के साथ हम श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों के विभाजन का भी एक आधार देख सकते है। यद्यपि दोनो ही सम्प्रदाय दूसरे की उत्पत्ति के बारे मे परस्पर विरोधी कथाओं का उल्लेख करते हैं किन्तु यह एक आकस्मिक घटना नहीं है। पार्श्व और महावीर की संघ व्यवस्था का मूल विवाद ही इस विभाजन के रूप मे प्रकट हुआ है।"[१३०] हरमन जैकोबी के उपर्युक्त कथन मे बहुत कुछ सत्यता है। यदि महावीर के युग मे सचेलक और अचेलक परम्परा का समन्वय सम्भव था तो आज भी इस विषय पर बहुत कुछ सोचा और किया जा सकता है। शर्त यही है कि हमारी भावनाएँ उदार हो और

सत्य को आग्रह का चश्मा उतार कर देखने का प्रयास किया जाये।

**पार्श्वनाथ और बौद्ध परम्परा**

देवसेन नामक दिगम्बर जैन आचार्य ने ९ वी शताब्दी मे लिखे अपने ग्रन्थ दर्शनसार मे यह कल्पना की है कि बुद्ध पार्श्वनाथ की निर्ग्रन्थ परपरा के पिहितास्रव नामक आचार्य के पास दीक्षित हुए थे। सम्भवत देवसेन की इस कल्पना का आधार यह हो कि बौद्ध ग्रन्थ मज्झिमनिकाय के महासिंहनादसुत्त मे बुद्ध के साधना काल का जो वर्णन है, उसमे बुद्ध यह कहते है कि मैं नग्न रहता था, केश लोचन करता था, हथेली पर भिक्षा लेकर खाता था, निमन्त्रण को स्वीकार नही करता था, कभी एक दिन छोडकर तो कभी दो दिन तो कभी सप्ताह और पखवाडे मे एक दिन भोजन करता था, अनेक वर्षों की धूल से मेरे शरीर पर मैल की परतें जम गई थी। मैं बडी साव-धानी से आता-जाता था, पानी की बूंदो के प्रति भी मेरी तीव्र दया रहती थी।[131]

बुद्ध का यह आचार निश्चित रूप से निर्ग्रन्थ परम्परा के आचार के साथ मेल खाता है। यह बात भी सत्य है कि बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करने के पूर्व उस युग के अनेक लोकमान्य एव प्रतिष्ठित साधको के पास जाकर उनकी साधना पद्धतियो को सीखा था। यह अलग बात है कि वे उनमे से किसी भी साधना पद्धति से पूर्णतया सन्तुष्ट न हो सके थे और अपने नवीन मार्ग की तलाश मे निकल पडे। चूंकि उस युग मे पार्श्वनाथ की परम्परा भी एक लोक-विश्रुत परम्परा थी और सभव है कि उन्होने उस परम्परा के किसी आचार्य से भी सम्पर्क स्थापित किया हो और तदनुरूप आचरण किया हो। किन्तु जिस प्रकार बुद्ध के आलारकालाम, उदकरामपुत्त आदि के पास उनकी साधना पद्धति को सीखने का उल्लेख है वैसी सूचना निर्ग्रन्थो या पिहितास्रव के सम्बन्ध मे नही मिलती। अत इसे एक क्लिष्ट कल्पना कहना ही उचित होगा। यह भी सम्भव है कि यह विवरण महावीर की निर्ग्रन्थ परम्परा की साधना को निरर्थक बताने की दृष्टि से बाद मे जोडा गया हो। क्योकि पार्श्वापत्यो का आचार इतना कठोर नही था। यह आचार मुख्यत आजीवको और महावीर की परम्परा से सम्बद्ध लगता है, पार्श्व की नही।

### पार्श्वनाथ और पाइथागोरस की परम्परा

पार्श्वनाथ की परम्परा के पिहितास्रव के सम्बन्ध मे एक यह भी मान्यता है कि वे ग्रीस की ओर गये थे और ग्रीस मे जो पाइथा-गोरस का सम्प्रदाय है वह पार्श्वनाथ की परम्परा के पिहितास्रव से सवधित है। यह भी सत्य है पाइथागोरस की मान्यताओ के सबध मे आज जो सूचनायें उपलब्ध हैं, उनसे स्पष्ट रूप से ऐसा लगता है कि वे भारतीय श्रमण परपरा और उसमे भी निर्ग्रन्थ परम्परा के अधिक निकट है।[132] तुलनात्मक दृष्टि से हम कुछ विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं। सर्वप्रथम पाइथागोरस हिंसा का उतना ही विरोधी था जितने श्रमण परम्परा के धर्म। उसके अनुयाइयो के लिए मासा-हार सर्वथा वर्जित था। इसी प्रकार पाइथागोरस आत्मालोचन की प्रक्रिया पर उतना ही वल देता था जितना कि जैन परम्परा में प्रतिक्रमण पर दिया जाता है। फिर भी पिहितास्रव और पाइथागोरस को अन्य साक्ष्यो के अभाव मे मात्र विचार साम्य के आधार पर एक मान लेना उचित नही होगा। इस सम्वन्ध मे गम्भीर शोध अपेक्षित है।

### पार्श्वनाथ परम्परा की पट्टावली

वर्तमान मे श्वेताम्वर परम्परा मे उपकेशगच्छ एक ऐसा गच्छ है जो अपने परम्परा को सीधे पार्श्वनाथ से जोडता है।[133] उसकी पट्टावली के अनुमार भगवान् पार्श्वनाथ के प्रथम पट्टधर गणधर शुभदत्त हुए। ये पार्श्वनाथ के निर्वाण के चौवीस वर्ष पश्चात् तक आचार्य पद पर रहे। आचार्य शुभदत्त के पट्टधर आर्य हरिदत्त हुए। इनका समय पार्श्व निर्वाण सम्वत् २४ से ९४ तक माना जाता है। इनके द्वारा लोहित्या-चार्य को जैन धर्म मे दीक्षित करने सम्बन्धी अनुश्रुति प्रचलित है। आर्य हरिदत्त के पट्टधर आर्य समुद्र हुए। आर्य समुद्र का काल पार्श्व निर्वाण सम्वत् ९४ से १६६ तक माना जाता है। इस प्रकार ये इकहत्तर वर्ष तक आचार्य पद पर रहे। इनके पश्चात् आर्य केशी श्रमण पार्श्वापत्य परम्परा के आचार्य हुए। पट्टावली के अनुसार इनका समय पार्श्व निर्वाण सम्वत् १६६ से २५० तक माना जाता है। आगम साहित्य मे उपलब्ध सूचना के अनुसार आर्य केशी भगवान्

महावीर के समकालीन थे। पट्टावली मे उपलब्ध इन सूचनाओ के सम्बन्ध मे ऐनिहासिक दृष्टि से विचार करना अपेक्षित है। जहा तक आर्य केशी का सबध है उनकी ऐतिहासिकता को अस्वीकार नही किया जा सकता। क्योकि उत्तराध्ययन और राजप्रश्नीय यह दो आगम ग्रन्थ उनके अस्तित्व के सबध मे हमे स्पष्ट सूचनाये देते हैं। जहा तक आर्य शुभदत्त, आर्य हरिदत्त और आर्य समुद्र की ऐनिहासिकता का प्रश्न है, इस सम्बन्ध मे थोड़े विचार की आवश्यकता अवश्य है कल्पसूत्र और समवायाङ्ग के अनुसार पार्श्व के प्रथम शिष्य आर्य दिन्न हैं। जबकि इन्ही ग्रन्थो मे पार्श्व के प्रथम गणधर को शुभ कहा गया है। यदि हम प्रथम गणधर का पूरा नाम शुभदत्त मानें तो आर्य दिन्न के साथ उसकी सङ्गति यह कह कर वैठाई जा सकती है कि सक्षेपीकरण मे आर्य शुभदत्त का आर्यदत्त ( अज्ज दिन्न ) रह गया हो। हेमविजय गणि ने पार्श्वचरित्र मे प्रथम गणधर का नाम आर्यदत्त ही सूचित किया है। अत पार्श्व की आचार्य परम्परा मे प्रथम पट्टधर के रूप मे आर्य शुभदत्त को स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु आर्य शुभदत्त का जो नेतृत्वकाल २४ वर्ष माना जाता है वह विवादास्पद लगता है। इतना निश्चित है कि पार्श्व ने उन्हे अपनी तीस वर्ष की आयु मे दीक्षित करके गणधर बनाया था। यदि हम गणधर वनाते समय उनकी आयु को पच्चीस वर्ष भी माने तो पार्श्व के निर्वाण के समय उनकी आयु ९५ वर्ष से कम नही रही होगी। पुन २५ वर्ष से कम आयु के व्यक्ति को गणधर जैसे महत्वपूर्ण पद पर स्थापित कर देना सम्भव नही लगता। सामान्य विश्वास के अनुसार भी उस समय की अधिकतम आयु १०० वर्ष माने तो इनका आचार्य काल ५ वर्ष से अधिक नही होता उनकी आयु लगभग १२० वर्ष मानने पर ही उनके आचार्य काल को २४ वर्ष माना जा सकता है। जहा तक आर्य हरिदत्त और आर्य समुद्र का प्रश्न है उनकी ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे साक्ष्यो के अभाव मे निश्चित रूप से कुछ भी कह पाना कठिन है। अत इनकी ऐतिहामिकता सन्दिग्ध ही लगती है, पुन इन दोनो आचार्यों का आचार्यत्व काल क्रमश ७०, ७२ वर्ष माना गया है। यह भी विचारणीय अवश्य है। इसी प्रकार आर्य केशी के ८४ वर्ष के आचार्यत्व काल पर भी प्रश्न चिह्न लगाया जा सकता है।

आचार्य केशी का समय पार्श्व के निर्वाण के २५० वर्ष पश्चात् बतलाया गया है, यह भी विचारणीय है। पार्श्व और महावीर के बीच २५० वर्ष का अन्तर आगमो मे उल्लिखित है किन्तु यह २५० वर्ष का अन्तर पार्श्व के निर्वाण और महावीर के जन्म के बीच माना जाये या पार्श्व के जन्म और महावीर के निर्वाण के बीच माना जाये अथवा पार्श्व के निर्वाण और महावीर के सघ सस्थापन के बीच माना जाय, यह विचारणीय है। पुन यह अन्तर पार्श्व और महावीर दोनो के जन्म या निर्वाण के बीच भी माना जा सकता है। पार्श्व के निर्वाण और महावीर के जन्म के बीच २५० वर्ष का काल मानने पर केशी महावीर के समकालीन होना सिद्ध नही होते यदि हम केशी को महावीर का समकालीन मानते हैं, जो कि आगम सम्मत भी है, तो हमे पार्श्व और महावीर के बीच जो २५० वर्ष का अन्तर बताया जाता है, वह दोनो के निर्वाण के बीच मानना होगा, क्योकि कल्पसूत्र मे स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि महावीर के निर्वाण के ९८० वर्ष बाद और पार्श्व के निर्वाण के १२१० वर्ष पश्चात् यह ग्रन्थ लिखा गया।[१८१] मेरी अपनी मान्यता तो यह है कि यदि पार्श्व और महावीर के बीच कुल ४ ही आचार्य हुए उनमे भी आचार्य आर्य केशी महावीर के समसामयिक हैं और आर्य शुभदत्त पार्श्व के समसामयिक हैं। अत इन दोनो के बीच केवल दो ही आचार्य शेष रहते हैं। अत पार्श्व के निर्वाण और महावीर के सघ स्थापना के बीच १५० वर्ष से अधिक का अन्तर नही रहा होगा यद्यपि इस कथन का कोई प्रामाणिक आधार नही है फिर भी यह कल्पना अतार्किक नही लगती।

चाहे हम उपकेशगच्छ को पार्श्व की परम्परा से सम्बन्धित मानें किन्तु उसकी पट्टावली विवादास्पद अवश्य लगती है उसका एक कारण तो यह है कि उसमे चार ही आचार्यों के नाम को दोहराया गया है। यद्यपि पूर्व मध्यकाल मे नामो को दोहराने की परम्परा रही है किन्तु यह परम्परा महावीर के समय या ईस्वी पूर्व मे भी थी इसका कोई प्रमाण नही मिलता है।

सवत् १६५५ मे रचित उपकेशगच्छीय पट्टावली, केशी श्रमण के पश्चात् पाचवें पट्ट पर स्वयप्रभसूरि का उल्लेख करती है तथा यह

जाती है कि स्वयंप्रभसूरि के शिष्य बुद्धकीर्ति से बौद्धधर्म प्रारम्भ हुआ। किन्तु हमारी दृष्टि में यह एक काल्पनिक अवधारणा ही है। यह तो सम्भव है कि पार्श्व की परम्परा से बुद्ध का कुछ परिचय रहा हो, किन्तु बुद्ध को स्वयंप्रभसूरि का शिष्य बताना एक कल्पना ही है। यह भी माना जाता है कि स्वयंप्रभसूरि ने श्रीमालनगर में धर्मोपदेश कर नब्बे हजार परिवारों को जैनधर्म में दीक्षित किया था। इन्हीं से श्रीमाल जाति का प्रारम्भ हुआ। आज इस सम्बन्ध में कोई भी साहित्यिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। श्रीमालनगर की प्राचीनता भी पुरातात्त्विक प्रमाणों से ई० पूर्व छठी शताब्दी में सिद्ध नहीं होती, अतः यह केवल परम्परागत विश्वास ही माना जा सकता है। उपकेशगच्छपट्टावली के अनुसार स्वयंप्रभसूरि के पश्चात् छठें पट्ट पर रत्नप्रभसूरि हुए। इनके द्वारा उपकेशपुर एवं कोरण्टपुर में भगवान् महावीर की प्रतिमा स्थापित करने के उल्लेख मिलते हैं। पट्टावली के विवरणानुसार ये दोनों मन्दिर वीर निर्वाण के ७० वर्ष पश्चात् निर्मित हुए थे किन्तु आज इस सन्दर्भ में भी हमें कोई पुरातात्त्विक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हो पा रहा है। पट्टावली में रत्नप्रभसूरि के द्वारा भी राजस्थान में लगभग एक लाख चालीस हजार लोगों को जैनधर्म में दीक्षित करने का उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि इस सम्बन्ध में पुष्ट प्रामाणिकता का अभाव है परन्तु इतना अवश्य माना जा सकता है कि इन्होंने राजस्थान में विहार करके वहाँ लोगों को जैनधर्म में दीक्षित किया होगा। इनका स्वर्गवास वीर निर्वाण संवत् ८४ में माना जाता है। राजस्थान में ई० पू० पाँचवीं शताब्दी में जैनधर्म की उपस्थिति पुरातात्त्विक प्रमाणों से सिद्ध होती है। वीर निर्वाण के ८४ वर्ष पश्चात् का एक अभिलेख बडली (राजस्थान) से प्राप्त होता है जो इस तथ्य को प्रमाणित कर देता है। यद्यपि यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि रत्नप्रभसूरि ने पार्श्वापत्य परम्परा के होकर भी पार्श्व के स्थान पर महावीर के मंदिरों का निर्माण क्यों कराया? इस सूचना से ऐसा लगता है कि केशी के महावीर की परम्परा में सम्मिलित हो जाने के पश्चात् उनके शिष्य स्वयंप्रभ और प्रशिष्य रत्नप्रभ भी अपने को महावीर की परम्परा से ही सम्बन्धित मानते रहे होंगे। ई० पू० ५वीं शताब्दी में पार्श्व की कोई स्वतंत्र परम्परा चल रही थी, इसका हमें

कोई प्रामाणिक आधार उपलब्ध नही हो पा रहा है। हमे केवल परम्परागत मान्यता पर ही विश्वास करना होता है।

यह विश्वास किया जाता है कि रत्नप्रभसूरि के समय मे ही उपकेशगच्छ से कोरण्टगच्छ निकला। किन्तु उपकेशगच्छ और कोरण्टगच्छ ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी मे अस्तित्ववान् थे, इसका भी कोई साहित्यिक या पुरातात्त्विक साक्ष्य उपलब्ध नही है। उपकेशगच्छ के सम्बन्ध मे सबसे प्राचीन पुरातात्त्विक साक्ष्य वि० स० १०११ का तथा कोरण्टगच्छ का वि० स० ११०२ का उपलब्ध होता है। जैन परम्परा के गण, कुल एव शाखा आदि के सम्बन्ध मे प्राचीनतम उल्लेख कल्पसूत्र पट्टावली, नंदीसूत्र पट्टावली तथा मथुरा के अभिलेखो मे प्राप्त होते है। इन अभिलेखो मे कही भी इन दोनो गच्छो का नाम नही आता है। उपकेशगच्छीय पट्टावली की मान्यतानुसार रत्नप्रभ पार्श्व की परम्परा के सातवें आचार्य थे। उनके पट्ट पर आठवें यक्षदेव आचार्य हुए और इन्हे मणिभद्र यक्ष का प्रतिबोधक भी बताया गया है। किन्तु यह एक विश्वास ही कहा जा सकता है। यक्षदेवाचार्य के पश्चात् नवें पट्ट पर कक्कसूरि, दसवें पट्ट पर देवगुप्त, ११वें पर सिद्धसूरि और १२वे पर रत्नप्रभ और १३ वे पर पुन. यक्षदेवसूरि हुए, यह उल्लेख मिलता है। किन्तु इस सम्बन्ध मे न तो कोई साहित्यिक प्रमाण है और न ही कोई पुरातात्त्विक साक्ष्य है। उपकेशगच्छ पट्टावली वि० स० १६५५ मे निर्मित है, अत प्राचीन साक्ष्यो के सम्बन्ध मे इसे पूर्णत प्रामाणिक नही माना जा सकता। उक्त पट्टावली के अनुसार चौदहवें पट्ट पर पुन कक्कसूरि हुए। यह माना जाता है कि इनके द्वारा ओसवाल वश मे तातहड, बापणा, कर्णाट, मोटाक्ष, कुलहट, विरिहट, सूचन्ति, चारवेडिया, चीचट, कुम्भट आदि गोत्र स्थापित हुए। इनका समय वीर निर्वाण के तीन सौ तीन वर्ष पश्चात् बताया गया है। इनके पश्चात् पद्रहवें पट्ट पर देवगुप्त, १६वे पर सिद्धसूरि और १७वें पर रत्नप्रभसूरि के होने के उल्लेख मिलते हैं। इनके सम्बन्ध मे पट्टावली मे भी अन्य कोई विवरण उपलब्ध नही है। १८वें पट्ट पर पुन. यक्षदेवसूरि के होने का उल्लेख है। इनका समय वीर निर्वाण के ५८५ वर्ष पश्चात् बताया गया है।

इनके द्वारा बारह वर्षीय दुष्काल के पश्चात् महावीर की परम्परा में हुए आर्यवज्र के शिष्य वज्रसेन के निधन के पश्चात् उनकी परम्परा मे उनके शिष्यो की चार शाखाये स्थापित करने का उल्लेख मिलता है। यद्यपि इन चार शाखाओ का उल्लेख कल्पसूत्र पट्टावली मे है किन्तु यह यक्षदेवसूरि द्वारा स्थापित हुई थी ऐसा उसमे उल्लेख नही है। यक्षदेवसूरि के पश्चात् १९वे पट्टपर कक्कसूरि, २०वे पर देवगुप्त, २१वे पर सिद्धसूरि, २२वे पर रत्नप्रभसूरि, २३वें पर यक्षदेव, २४वे पर पुन कक्कसूरि, २५वे पर देवगुप्तसूरि, २६वे पर सिद्धसूरि, २७वें रत्नप्रभसूरि, २८वे पर यक्षदेवसूरि, २९वे पर पुन कक्कसूरि, ३०वे पर देवगुप्त, ३१वे पर सिद्धसूरि, ३२वे पर रत्नप्रभसूरि, ३३वे पर यक्षदेवसूरि, ३४वे पर पुन कक्कसूरि, ३५वें पर देवगुप्त तथा ३६वे पर सिद्धसूरि हुए। इस प्रकार ८वे पट्ट से लेकर ३६वे पट्ट तक कक्कसूरि, देवगुप्तसूरि, सिद्धसूरि, रत्नप्रभसूरि और यक्षदेवसूरि इन पाच नामो की ही पुनरावृत्ति होती रही है। इन आचार्यो के सम्बन्ध मे पट्टावली भी नामोल्लेख के अतिरिक्त अन्य कोई जानकारी नही देती है। इसके पश्चात् हम देखते हैं कि पट्टावली मे केवल तीन नामो कक्कसूरि, देवगुप्त और सिद्धसूरि की ही पुनरावृत्ति होती है। फलत ३७वें पट्ट पर कक्कसूरि, ३८वे पर देवगुप्त, ३९वे पर सिद्धसूरि, ४०वें पट्ट पर पुन कक्कसूरि, ४१वे पर देवगुप्तसूरि, ४२वे पर सिद्धसूरि के होने का उल्लेख है। ४१वें पट्टधर देवगुप्त का समय वि० स० ९९५ बताया गया है। उपकेशगच्छीय पट्टावली मे सर्वप्रथम यही से ऐतिहासिक सकेत उपलब्ध होने लगते हैं। पट्टावली इनके शिथिलाचारी होने का भी उल्लेख करती है तथा यह बताती है कि देवगुप्तसूरि के शिथिलाचारी होने पर सघ ने इनके पट्ट पर सिद्धसूरि को स्थापित किया। सिद्धसूरि के पश्चात् ४३वें पट्टधर कक्कसूरि हुये। इन्हे "पचप्रमाण" नामक ग्रन्थ का कर्ता बताया गया है। ४४वे पट्टधर देवगुप्त हुए। इनका काल विक्रम सम्वत् १०७२ बताया गया है। ४५वें पट्टधर नवपदप्रकरणस्वोपज्ञटीका के कर्ता सिद्धसूरि और ४६वें पट्टधर पुन कक्कसूरि के होने के उल्लेख मिलते हैं। इन कक्कसूरि के सम्बन्ध मे १०७८ ई० का एक अभिलेख प्राप्त होता है। ४७वे पट्ट पर

पुन देवगुप्त, ४८वें और ४९वें पर पुन कक्कसूरि के होने का उल्लेख है। इनके पश्चात् ५०वें पट्ट पर देवगुप्तसूरि हुए इनका समय सवत् ११०८ वताया गया है। कहा जाता है कि इन्हे भिन्नमाल नगर मे ६ लाख मुद्रा खर्च करके आचार्य पद पर महोत्सवपूर्वक स्थापित किया गया था। यहा विचारणीय तथ्य यह है कि ४४वें पट्टधर देवगुप्तसूरि का समय वि० स० १०७२ वनाया गया है और ४५वें पट्टधर कक्कसूरि का १०७८ का अभिलेख भी प्राप्त होता है। १०७८ वि० स० से लेकर ११०८ तक के ३० वर्ष के अल्प समय मे चार आचार्यों का होना सदेहास्पद लगता है। सभवत पट्टावलीकार ने तीनो नाम पुन दोहरा दिये है। ५१वे पट्टधर सिद्धसूरि, ५२वें पट्टधर कक्कसूरि का समय वि० स० १२५४ वताया गया है। ५३वे पट्टपर देवगुप्तसूरि, ५४वें पर सिद्धसूरि, ५५वे पर पुन कक्कसूरि हुए। इन ५५वें पट्टधर का समय पट्टावली के अनुसार वि० स० १२५२ है। इनके सवन्ध मे १२५९ का अभिलेख भी मिलता है, इसमे यह सिद्ध होता है कि यह एक ऐतिहासिक आचार्य रहे होगे। ५६वे देवगुप्त, ५७वे सिद्धसूरि, ५८वें कक्कसूरि, ५९वे देवगुप्त, ६०वें सिद्धसूरि, ६१वे कक्कसूरि, ६२वें देवगुप्त ६३वें सिद्धसेन, ६४वें कक्कसूरि, ६५वें देवगुप्तसूरि, ६६वें सिद्धसूरि हुए। इस प्रकार वि० स० १२५२ से १३३० के मध्य लगभग ७८ वर्ष की अवधि मे दस आचार्यों के होने के उल्लेख हैं। यह विवरण भी सदेहास्पद ही लगता है। लगता है कि इसमे दो बार इन तीनो नामो को पुन दुहरा दिया गया है। अधिकतम ७८ वर्ष मे ३ आचार्यों को होना चाहिए। ६६वें पट्टधर सिद्धसूरि के वि० स० १३४५ का एक अभिलेख भी मिलता है। सिद्धसूरि का एक अभिलेख १३८५ का भी प्राप्त होता है।

पट्टावली और अभिलेखीय आधारो पर ६५-६६वें आचार्य का काल ५५-५६ वर्ष आता है। यद्यपि ६७वे पट्टधर कक्कसूरि का एक अभिलेख १३८० का उपलब्ध है। इससे ऐसा लगता है कि सिद्धसूरि ने अपने जीवन के उत्तरार्ध मे ही कक्कसूरि को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था और लगभग १४ वर्ष की अवधि तक दोनो ही उनके साथ आचार्य पद पर रहे होगे।

६७वे पट्टधर कक्कसूरि का आचार्यपद महोत्सव शाह जागर के द्वारा वि० स० १३७८ मे हुआ था इनके सम्बन्ध मे वि० स १३८० से १४०५ तक के अनेक अभिलेख मिलते हैं। पट्टावली के अनुसार ६८वें पट्टधर देवगुप्तसूरि हुए। इनका आचार्य पद महोत्सव ५ हजार स्वर्णमुद्राये खर्च करके सारगधर नामक श्रावक ने दिल्ली नगर मे वि० स० १४०९ मे किया था। इनके सम्बन्ध मे अभिलेखीय साक्ष्य वि० स० १४३० का मिलता है।

६९वे पट्टधर सिद्धसूरि हुए। पट्टावली के अनुसार वि० स० १४७५ मे इनका आचार्यपद महोत्सव किया गया। यद्यपि इनके सबध मे अभिलेखीय साक्ष्य वि०स० १४४५ का मिलता है। यह एक विवादास्पद स्थिति है। क्योकि देवगुप्तसूरि का आचार्यपद महोत्सव पट्टावली के अनुसार १४०९ मे है और उनका अभिलेखीय साक्ष्य भी १४३० का है। अत यह स्वाभाविक प्रतीत होता है कि वि० स० १४५५ के लगभग सिद्धसूरि हुए होगे। पट्टावली १४७५ वि० स० मे होने वाले जिस सिद्धसूरि का उल्लेख करती है, वे सभवत. ७०वे पट्टधर होगे। हमे ऐसा लगता है कि पट्टावली मे देवगुप्त सूरि के पश्चात् सिद्धसूरि कक्कसूरि और देवगुप्तसूरि की एक पुनरावृत्ति को छोड दिया गया है, क्योकि ७१वें पट्टधर देवगुप्तसूरि के सम्बन्ध मे हमे १४६८ से १४९७ तक के अनेक अभिलेख उपलब्ध होते हैं। वि० स० १४३० से वि स० १४९४ तक की अवधि मे हमे एक ही साथ देवगुप्त एव सिद्धसूरि के अनेक अभिलेखीय साक्ष्य मिलते हैं। इससे ऐसा लगता है कि इस अवधि के बीच तीनो नामो की एक पुनरावृत्ति और हुई होगी। पट्टावली के अनुसार ७२वे पट्टधर सिद्धसूरि हुए। पट्टावली इनका काल वि० स० १५६५ मानती है। हमे इनके सम्बन्ध मे १५६६ से ७६ तक के अनेक अभिलेख उपलब्ध होते हैं।

७३वे पट्टधर कक्कसूरि हुए। पट्टावली के अनुसार इन्हे वि० स० १५९९ मे जोधपुर नगर मे आचार्यपद प्रदान किया गया। इनके सम्बन्ध मे कोई अभिलेखीय साक्ष्य उपलब्ध नही है।

७४वे पट्टधर देवगुप्तसूरि का पाटमहोत्सव वि० स० १६३१ मे मन्त्री सहसवीर के पुत्र देदागर ने किया। इनके सम्बन्ध मे १६३४ का एक अभिलेख भी उपलब्ध होता है।

७५वे पट्टधर सिद्धसूरि का पाटमहोत्सव विक्रमपुर नगर मे वि० स० १६५५ मे महामत्री ठाकुरसिंह ने किया। इनके सम्वन्ध मे वि० स० १६५९ का अभिलेखीय साक्ष्य भी उपलब्ध है।

उपकेशगच्छ की जिस पट्टावली को हमने आधार वनाया है, वह इन्ही के काल मे वनी। यद्यपि उसमे इनके वाद भी निम्न नाम जोडे गये।

७६वे पट्टधर पुन कक्कसूरि हुए। इनका पाटमहोत्सव वि० स० १६८९ मे मत्री ठाकुरसिह की पुत्रवधू साहिवदे द्वारा हुआ।

पट्टावली के सूचनानुसार ७७वे पट्टधर देवगुप्तसूरि हुए, इन्हे वि० स० १७२७ मे आचार्यपद प्रदान किया गया।

७८वे पट्टधर सिद्धसूरि हुए। इनका पाटमहोत्सव वि० स० १७६७ मे भगतसिह ने किया।

७९वे पट्टधर पुन कक्कसूरि हुए। इनका पाटमहोत्सव वि० स० १७८३ मे मत्री दौलतराम ने किया।

८०वे पट्टधर देवगुप्तसूरि हुए। इनको आचार्यपद पर १८०८ मे प्रतिष्ठित किया गया।

८१वे पट्टधर सिद्धसूरि हुए। इनका पट्टाभिषेक खुशालचन्द ने वि० स० १८४७ मे किया।

८२वें पट्टधर कक्कसूरि हुए। इनका पाटमहोत्सव वि० स० १८९१ मे वीकानेर मे हुआ।

८३वें पट्टधर देवगुप्तसूरि हुए। इनका पट्टाभिषेक वि० स० १९०५ मे फलौदी नगर के वैद्य मुहता के परिवारो द्वारा किया गया।

८४वें पट्टधर सिद्धसूरि हुए। इनका पट्टाभिषेक वैद्य मुहता गोत्र के ठाकुर श्री हरिसिंह जी के द्वारा वि० स० १९३५ मे किया गया। इनके पश्चात् इस परम्परा मे वर्तमान काल तक कुछ और आचार्य हुए होंगे जिनकी सूचना हमे नही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपकेशगच्छ, जो स्वय को पार्श्वनाथ की परम्परा से सम्वद्ध मानता है, पार्श्व से लेकर २० वी शती तक

अपनी आचार्य परम्परा को प्रस्तुत करता है पर इस पट्टावली के ध्यान पूर्वक अध्ययन से पता चलता है कि आर्यकेशी के पश्चात् ११वीं शती के मध्य तक हमे इस परम्परा के सम्बन्ध मे अनुश्रुति से नामो की पुनरावृत्ति के अतिरिक्त ऐतिहासिक और साहित्यिक साक्ष्य नही मिलते है। अत हमे अन्धकार मे ही रहना पडता है। यद्यपि ११ वीं से २० वीं शती तक इस गच्छ की जो पट्टावली उपलब्ध है उसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। उपकेशगच्छ के सन्दर्भ मे प्राचीनतम स्पष्ट अभिलेख वि० स० १०११ से प्राप्त होने लगता है। अर्थात ११ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर १८ वीं शताब्दी तक की पाषाण एव धातु प्रतिमा तथा मदिरो से उपकेशगच्छ के अनेक अभिलेख उपलब्ध हैं। अत ११ वी से २० वीं शती तक इसकी ऐतिहासिकता निर्विवाद है यद्यपि इससे पूर्व के १५०० वर्ष का काल अन्धकारपूर्ण ही है। यद्यपि उपकेशगच्छ स्वय को पार्श्व की परम्परा से जोडता है फिर भी हमे इस गच्छ के आचारादि मे कोई ऐसी विशिष्ट परम्परा नही मिलती है जो उसे अन्य श्वेताम्बर गच्छो से स्पष्ट रूप से अलग कर सके। सम्भव यह है कि आर्यकेशी आदि के द्वारा महावीर के सघ मे विलीन होने पर इन्होंने अपनी विशिष्ट पहचान तो खो दी किन्तु अपने को पार्श्व की परम्परा से जोडे रखने की अनुश्रुति यथावत् जीवित रखी। अत हम यह कह सकते है कि पार्श्व की परपरा २० वी शती तक जीवित रही है चाहे उसकी अपनी विशिष्ट पहचान केशी आदि पार्श्वापत्य आचार्यों के महावीर के सघ मे विलीन होने के पश्चात् समाप्त हो गयी हो।

## पार्श्व सम्बन्धी साहित्य

यद्यपि स्थानाग, समवायाग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, राजप्रश्नीय आदि मे पार्श्व और उनकी परम्परा के सम्बन्ध मे प्रकीर्ण विवरण उपलब्ध होते हैं, किन्तु पार्श्व के सम्बन्ध मे सुव्यवस्थित विवरण देने वाला कल्पसूत्र को छोड़कर अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है। कल्पसूत्र भी विशुद्धरूप से केवल पार्श्व का ही जीवनवृत्त नहीं देता है अपितु वह अन्य तीर्थंकरो का जीवन परिचय सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत करता है। निर्युक्तियो, भाष्यो और चूर्णियो मे भी पार्श्व और उनकी परम्परा के

कुछ विवरण उपलब्ध हो जाते हैं, किन्तु ये ग्रन्थ भी पार्श्व का सुव्यवस्थित जीवन विवरण प्रस्तुत नही करते हैं। श्वेताम्बर परम्परा मे सर्व प्रथम शीलाक (लगभग ९ वी शती) के चउपन्नपुरिसचरिय और आचार्य हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र मे पार्श्व का जीवनवृत्त मिलता है।

इसी प्रकार दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ति, भगवती आराधना आदि से पार्श्व एव पार्श्वस्थो के सम्बन्ध मे कुछ सूचनाए उपलब्ध हैं, किन्तु इनमे पार्श्व के सुव्यवस्थित जीवनवृत्त का अभाव है। दिगम्बर परम्परा मे पार्श्व के सुव्यवस्थित जीवनवृत्त को प्रस्तुत करने वाला प्रथम ग्रथ जिनसेन एव गुणभद्र का महापुराण है। महापुराण दो भागो—आदिपुराण और उत्तरपुराण मे विभाजित है। आदिपुराण मे ऋषभदेव का वर्णन है, जबकि उत्तरपुराण मे अन्य २३ तीर्थंकरो का वर्णन है। इसी उत्तरपुराण मे पार्श्व का जीवनवृत्त भी वर्णित है। यह उत्तरपुराण गुणभद्र की कृति है और इसका रचनाकाल ई० सन् ८४८ के लगभग माना जा सकता है किन्तु इसके पूर्व पार्श्व के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे जाने लगे थे। अभी तक उपलब्ध सूचनाओ के अनुसार प्राकृत, सस्कृत और अपभ्रश के लगभग २५ से अधिक स्वतत्र ग्रथ पार्श्व के जीवनचरित पर लिखे गये हैं जिनकी यहाँ सक्षिप्त चर्चा की जा रही है।

(१) **पार्श्वाभ्युदय जिनसेन**—पार्श्व पर लिखे गये स्वतन्त्र ग्रन्थो मे पार्श्वाभ्युदय का स्थान सर्वप्रथम आता है। यह ग्रथ दिगम्बर जैनाचार्य जिनसेन प्रथम की रचना मानी जाती है। इसका रचनाकाल ई० सन् ७८३ से पूर्व माना जाता है। मूलत एक समस्यापूर्ति काव्य के रूप मे इस ग्रन्थ की रचना की गयी है। इसमे चार सर्ग और ३६४ पद्य हैं। जिसमे मुख्यतया पार्श्व के उपसर्गों की चर्चा उपलब्ध होती है। यह ग्रन्थ सस्कृत भाषा मे निबद्ध है।

(२) **पार्श्वनाथचरितम् : वादिराजसूरि**—यह ग्रन्थ १२ सर्गो मे विभक्त है, तथा पार्श्व के पूर्वभवो और जीवनवृत्त का विस्तार से विवेचन करता है। इसकी भाषा सस्कृत है। कवि ने 'इसे पार्श्व जिनेश्वरचित महाकाव्य' कहा है। यह ई० सन् १०१९ की रचना है।

है। ग्रथ के लेखक दिगम्बर परम्परा के मूलसघ के वासवचन्द्र के शिष्य देवचन्द्र हैं। डा नेमिचन्द्र शास्त्री ने इस ग्रन्थ को १२ वी शताब्दी ई० सन् के आसपास माना है।

(८) **पार्श्वनाथचरित्र माणिक्यचन्द्रसूरि**—श्वेताम्बर राजगच्छीय माणिक्यचन्द्रसूरि ने वि स १२७६ मे इस ग्रन्थ की रचना की है। ग्रन्थ मे १० सर्ग हैं। यह ग्रन्थ ६७७० श्लोक परिमाण है। इसमे श्री पार्श्व के पूर्वभवो के साथ उनके जन्म, दीक्षा, कैवल्य एव निर्वाण का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इसकी ताडपत्रीय प्रति शान्तिनाथ जैन ग्रन्थ भण्डार, खभात मे सुरक्षित है।

(९) **पार्श्वनाथचरित्र विनयचद्र**—सस्कृत भाषा मे निबद्ध यह कृति ६ सर्गों मे विभक्त है तथा ४९८५ श्लोक प्रमाण है। यह कृति अभी तक अप्रकाशित ही है। इसकी कथावस्तु परम्परागत ही है। इस ग्रथ के रचनाकार चन्द्रगच्छीय मानतुगसूरि के प्रशिष्य एव रविप्रभसूरि के शिष्य विनयचन्द्रसूरि हैं। ई सन् १२२९-८८ के मध्य इस ग्रन्थ का रचनाकाल माना जाता है।

(१०) **पार्श्वनाथचरित्र सर्वानन्दसूरि**—सस्कृत भाषा मे निबद्ध ग्रथ मे पाँच सर्ग है। यह ग्रथ अप्रकाशित है। इसकी ताडपत्रीय प्रति सघवीपाडा ग्रन्थ भडार पाटन, मे सुरक्षित है। यह अत्यन्त जीर्ण है और इसमे कुल ३४५ पृष्ठ हैं जिसमे प्रारम्भ के १५६ पृष्ठ लुप्त हैं। ग्रन्थ का रचनाकाल ई. सन् १२३४ माना गया हैं। इसके रचयिता श्वे० परम्परा के शालिभद्रसूरि के प्रशिष्य एव गुणभद्रसूरि के शिष्य सुधर्मागच्छीय सर्वानन्दसूरि है।

(११) **पार्श्वनाथचरित्र भावदेवसूरि**—सस्कृत भाषा मे निबद्ध इस कृति मे ८ सर्ग और लगभग ६ हजार श्लोक हैं। इस ग्रन्थ के रचनाकार चन्द्रकुल के खडिलगच्छ के आचार्य भावदेवसूरि हैं। ग्रन्थ का रचनाकाल वि० स० १४१२ ( ई० सन् १३५५ है )।

(१२) **पार्श्वनाथपुराण सकलकीर्ति**—सस्कृत भाषा मे निबद्ध इस कृति मे २३ सर्ग हैं। इस ग्रन्थ के रचनाकार दिगम्बर परम्परा के

वलात्कारगण के ईडर शाखा के आचार्य सकलकीर्ति माने गये हैं। ग्रथ का रचनाकाल ईसा की चौदहवी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है।

(१३) पासनाहचरिउ रइधू —अपभ्रश भाषा में निवद्ध इस ग्रन्थ मे ७ सधियाँ हैं। इसकी कथावस्तु परम्परागत है। ग्रन्थ के रचनाकार दिगम्बर परम्परा के काष्ठासघ के माथुरगच्छीय पुष्कर-गणीशाखा से सम्बद्ध महाकवि रइधू हैं। इनका समय ई० सन् १४०० से १४७९ के मध्य माना जाता है।

(१४) पासनाहचरिउ असवाल—अपभ्रश भाषा से निवद्ध इस ग्रथ मे १३ सन्धियाँ है। इसकी कथावस्तु पारम्परिक ही है। ग्रथ अभी तक अप्रकाशित है। इसकी एक प्रति अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर, मोती कटरा, आगरा मे उपलब्ध है। इस ग्रथ के रचनाकार असवाल कवि गृहस्थ थे, किन्तु दिगम्बर परम्परा के मूल सघ के वलात्कार गण से सम्बन्धित थे। इस ग्रन्थ का रचनाकाल ई० सन् १४८२ है।

(१५) पासपुराण तेजपाल–यह ग्रन्थ एव अभी तक अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति अजमेर और जयपुर के ग्रथ भण्डारो मे उपलब्ध है। आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर मे उपलब्ध इसकी प्रति पर रचनाकाल वि० स० १५१६ अर्थात् ई० सन् १४५८ उल्लिखित है। इसके लेखक कवि तेजपाल ने इसकी रचना मूलसघ के पद्म-नन्दिन के शिष्य शिवनन्दि भट्टारक के निर्देश से की थी।

(१६) पासनाहकाव्य पद्मसुन्दरगणि—यह कृति सस्कृत भाषा मे निवद्ध है। इसके रचनाकार श्वेताम्बर परम्परा के तपागच्छ की नागोरी शाखा के पद्मसुन्दर गणि हैं। ये जोधपुर नरेश मालदेव द्वारा सम्मानित थे। ये ईसा के सोलहवी शताब्दी के विद्वान् हैं। अत ग्रथ का रचनाकाल भी यही होना चाहिए।

(१७) पार्श्वनाथचारित्र हेमविजय—प्रस्तुत कृति सस्कृत भाषा मे निवद्ध है। इसमे ६ सर्ग और ३०३६ श्लोक हैं। ग्रन्थ की कथा-वस्तु परम्परागत है। इसके रचयिता श्वेताम्बर परम्परा के कमल-

विजयसिंह के शिष्य हेमविजयगणि हैं। ग्रथ का रचनाकाल ई० सन् १५७५ है।

(१८) पार्श्वपुराण वादिचद्र—१५००० श्लोक प्रमाण यह विशाल ग्रन्थ पौराणिक शैली मे लिखा गया हैं। इस ग्रन्थ के रचयिता दिगम्बर परम्परा के भट्टारक ज्ञानभूषण के प्रशिष्य एव भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य वादिचन्द्र हैं। ई० सन् १६८३ मे यह ग्रन्थ लिखा गया। इस अप्रकाशित ग्रन्थ की एक प्रति इटावा के सरस्वती भण्डार मे है।

(१९) पार्श्वनाथचरित उदयवीरगणि—यह ग्रन्थ ८ सर्गों मे विभक्त एव सस्कृत भाषा मे निबद्ध है। यह हेमचन्द्रसूरि के त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित की परम्परानुसार ही लिखा गया है। ग्रन्थ के रचनाकार तपगच्छीय हेमसूरि के प्रशिष्य और सघवीर के शिष्य उदयवीरगणि हैं। ग्रथ का रचनाकाल वि० स० १६५४, ई० सन् १५९७ माना जाता है।

(२०) पार्श्वपुराण चन्द्रकीर्ति—यह ग्रथ १५ सर्गों मे विभक्त एव २७१० श्लोक प्रमाण है। वि० स० १६५४ ई० सन् १५९७ मे भट्टारक श्रीभूषण के शिष्य चन्द्रकीर्ति ने इस ग्रथ की रचना की। ये दिगम्बर पम्परा के काष्ठासघ के थे। ग्रथ की प्रशस्ति मे इन्होने अपनी विस्तृत गुरु परम्परा की चर्चा की है। डा० जोहरापुरकर ने चन्द्रकीर्ति का समय वि० स० १६५४-१६८१ अर्थात् ई० सन् १५९७-१६२४ ई० माना है।

## सन्दर्भ :

१ स्थ (T) निग्गिये कुले गनिस्य उग्गहिनिय शिषो वाचको घोषको आर्हतो पर्श्वस्य प्रतिमा

—जैन शिलालेख संग्रह द्वितीय भाग लेख क्रमांक ८३ पृ ५२

२ जैन साहित्य का इतिहास पूर्वपीठिका ( पं० कैलाशचन्दजी ) पृ० ४५०

३ (अ) पारशव इत्येके । बौधायन धर्मसूत्र १।१७।३
(ब) कामात्पारशव इति पुत्रा । वही २।३।३०

४. (अ) देखें—जैन आगमो पर गुजरात विश्वविद्यालय अहमदाबाद द्वारा आयोजित सेमीनार मे पठित मेरा लेख। (अप्रकाशित)
(ब) ऋषिभाषित की भूमिका, राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर से प्रकाश्यमान।

५ (अ) पासेण अरहता इसिणा बुइतं।
(ब) गति वागरणगथाओ पभिति जाव संमित्त इम अज्झयणं ताव इमो बीओ पाढो दिस्सति। —इसिभासियाइ ३१

६ (ए) सूत्रकृतांग २।७।८
(बी) आचारांग द्वितीय श्रुतस्कन्ध १५।२५
(सी) उत्तराध्ययन २३।१, २३।१२ २३।२३
(डी) भगवती, १।४२३, २।९५, ९७, १०९, ११०, ५।२५४-२५७; ९।७८
(इ) कल्पसूत्र—१४९-१५९
(एफ) निरयावलिका—३।१
(जी) आवश्यकनिर्युक्ति २२१-३२, २३४, २५२-५४, २५९, २६२, २६८, २९९, ३०५, ३७७, ३८०, ३८४-८९, १०९८
(एच) समवायाग ८।८, ९।४, १६।४, २३।३, २४।१, ३०।६, ३८।१, ७०।२, ९५।३
प्रकीर्ण समवाय १४, ३४, ६२, ६३, ६६, ७८, २२२, २२४।१, २२७।१, २२८।१
स्थानांग ९।६१;

७. समणस्स ण भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था । —आचाराग २।१५।२५

८ एक समयभगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मि । अथ खो वप्पो सक्को निगण्ठमावगो । —अगुत्तरनिकाय, चतुष्कनिपात, वग्ग ५ देखें—अगुत्तरनिकाय की अट्ठकथा का यही सन्दर्भ ।

८-A एक समय भगवा वेसालिय विहरति महावने कूटागारसालाय । तेन खो पन ममयेन सच्चको निगण्ठपुत्तो वेसालिय पटिवसति भस्सप्पवादको पण्डितवादो साधुसम्मतो वहुजनस्स ।

—मज्झिमनिकाय १।३५।१।१

९ निग्गथा एक माटका

—मज्झिमनिकाय महासिहनादसुत्त, १।१।२

तुलनीय—आचाराग १।९

१० छट्ठेण भत्तेण अपाणएण, एग साडगमायाए ।—आचाराग द्वितीय श्रुतस्कध १५।७६६

११ सवच्छर साहिय मास, ज ण रिक्कासि वत्थग भगव ।
अचेलए ततो चाई, त वोसज्ज वत्थमवगारे ॥

—आचाराग, १।९।४

12 See–Sacred Books of the East · Vol XLV Jain, Sutras Introduction, pp xxii xxix-xxxii

१३ अचेलगो य जो धम्मो जो इमो सन्तरुत्तरो ।
उत्तरा० २३।१३

१४ निगण्ठो नातपुत्तो चातुयामसवरसवुतो सव्ववारिवारितो 'सव्ववारियुतो सव्ववारिधुतो सव्ववारिफुटो ।
मज्झिमनिकाय, भाग २ उपालिसुत्त ६।०।८, पृष्ठ ४९

१५ (अ) तए ण उदए पेढालपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पचमहव्वइय सपडिक्कमण धम्म उवसपज्जित्ताण विहरइ ।
—सूत्रकृताङ्ग २।७।३८,

(व) तए ण से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवने वदइ नमसइ, वदित्ता, नमसित्ता चाउज्जामाओ धम्माओ पच-मव्वइय सपडिक्कमण धम्म उवसपज्जित्ता ण विहरति ॥
—भगवतीसूत्र १।९।४३२,

(स) पचमहव्वयधम्म पडिवज्जइ भावओ।
—उत्तराध्ययनसूत्र २३ ८७

१६ उदए पेढालपुत्ते भगव पासावच्चिज्जे णियठे मेदज्जे।
—सूत्रकृताङ्ग २।७।८

१७ पासावच्चिजे कालासवेसियपुत्ते णाम अणगारे।
—भगवतीसूत्र १।९।४२३,
तेण समएण पामावच्चिज्जा थेरा भगवतो भावेमाणा विहरति ॥ – भगवतीसूत्र २।५।९५, ५।९।२५४-२५५,
तेण कालेण तेण समएण पासावच्चिज्जे गगेए नाम अणगारे। —भगवतीसूत्र ९।३२।७८

१९ तेण समएण पासावच्चिजे केसी नाम कुमारसमणे भावेमाणे विहरइ। राजप्रश्नीयसूत्र—२१३, (सपा० श्री मधुकर मुनि)

२० तेण कालेण २ पासे ण अरहा पुरिसादाणीए आइगरे, जहा महावीरो, नवुस्सेहे सोलसेहिं समणसाहस्सीहिं अट्टतीसाए अज्जियासहस्सेहिं जाव कोट्ठए समोसढे।
निरयावलिया पुप्फियाओ १,

२१ अह पि ण गोयमा! एवमाइयक्खामि, भासामि, पण्णवेमि परुवेमि—भगवती २०।५।११०,
पासेण अरहया पुरिसादाणिएण सासए लोए वुइए ..
भगवती ५।९।२५५

२२ चाउज्जामे णियण्ठे अट्ठविह कम्मगण्ठि णो पकरेति ऋषिभाषित ३१
पच अत्थिकाया ण कयाति णासी जाव णिच्चा, वही

23 Jain Sutras by Hermann Jacobi, ( SBE, Vol-XLV ) Introduction p xxi

24 We ought also to remember both that the Jaina religion is certainly older than Mahāvira, his reputed predecessor Pārsva having almost certainly existed as a real person

—The Uttaradhyayanasutra by J Charpentier, Uppsala 1922, Introduction, p 21

25 As he ( Vardhamān Mahāvira) is referred to in the Buddhist Scriptures as one of the Buddha s chief opponents, his historicity is beyond doubt .. Parsva was remembered as twentythird of the twentyfour great teachers or Tirthankaras 'ford makers of the Jaina faith —The Wonder that was India by Prof A L Basham, pp 287 88

26. Miscellaneous Essays, ii, p 276

27 Parsvanātha, the Tirthankara who immediately preceded Mahāvira, may also have been an historical person If so, he was the real founder of Jainism Mahāvira being only a reformer who carried still further the work that Pārsvanātha had begun - The Heart of Jainism by S. Stevenson, New Delhi, 1970, p 48

28 Buddhists refer to them as ascetics (samanas) and brahmins Little is known of them historically, but one of these bodies, the Jainas, still exists The Quest of Enlightenment by E. J. Thomas, London 1950, Intfrduction p 4.

29 See Indian Philosophy by Dr S. Radhakrishnan, Vol. I p 291

30

31 The Jainas were a powerful mendicant order which originated or was reorganised a few years before Śākyamuni —The Way to Nirvana by M Poussin, p 67

32 See. History of Indian Philosophy by S K Belvalkar & R D Ranade, Poona 1927, pp. 44.-45

३३ पार्श्व का एक शिष्य महावीर के एक शिष्य से मिला तथा उसने प्राचीन जैन धर्म तथा महावीर द्वारा उपदिष्ट जैन धर्म के बीच समन्वय कराया, यह सूचित करता है कि पार्श्व सम्भवत एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे। —भारतीय दर्शन का इतिहास, लेखक – सुरेन्द्रनाथ दास गुप्ता, भाग १, पृ १७८

34 He (Vardhamāna) was not so much the founder of a new faith as the reformer of the previously existing creed of Pārsvanātha who is said to have died in 776 B C There is no doubt that Jainism prevailed even before Vardhamana or Parsvanātha —Indian Philosophy by S Radhakrishnan Vol I p 287

35 The twenty-third teacher, Pārsva, the immediate predecessor of Mahāvira, seems to have been a historical figure—An Advanced History of India by R C Majumdār, Vol I p, 86

'३६ जैन धर्म का मौलिक इतिहास—लेखक आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज पृ ३२५-२६

३७ उवसग्गहर पास पास वदामि कम्मघणमुक्क।
विसहर-विस-निन्नास मंगल-कल्लाण आवास ॥
विसहरफुलिंगमत कठे धारेइ जो सया मणुओ।
तस्स गह-रोग-मारि-दुट्ठजरा जति उवसाम ॥

मूर्ध्नि फणिफणच्छत्रो यस्य पार्श्वोऽसितद्युति ।
पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट-पार्श्वनाथ ९२-९३

(ब) पार्श्वयक्ष गजमुख मुरगफणामण्डितशिरस श्यामवर्ण कूर्म-वाहन चतुर्भुज बीजपूरकोरगयुतदक्षिणपाणि नकुल-काहियुतवामपाणि चेति । निर्वाणकलिका १८-२३,

४० प्रकीर्णक समवाय २२० २२१,
समवायाग ९।८, १००।८, ८।८, १६।८, ३८।१

४१ तेण कालेण तेण समएण पासे अरहा पुरिसादाणीए पंचविसाहे हुत्था, तंजहा-विसाहाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते १, विसाहाहिं जाए २, विसाहाहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ३, विसाहाहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ४, विसाहाहिं परिनिव्वुए ॥१४८॥

तेण कालेण तेण समएण पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से गिम्हाण पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले, तस्स ण चित्तबहुलस्स चउत्थीपक्खेण पाणयाओ कप्पाओ वीसं सागरोवमट्ठिइयाओ अणतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वाणारसीये नयरीये आससेणस्स रण्णो वम्माए देवीए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेण जोगमुवागएण आहारवक्कंतीए (प्र ७००) भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥ (१४९)

तेण कालेण तेण समएण पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से हेमताण दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसवहुले तस्स ण पोसवहुलस्स दसमी-पक्खेण नवण्हं मासाण बहुपडिपुण्णाण अद्धट्ठमाण राइदियाण विइक्कताण पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेण जोगमुवागएण आरोग्गा आरोग्य दारय पयाया ।१५१।

पुव्वि पि ण पासस्य अरहओ पुरिसादाणीयस्स माणुस्सगाओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आहोहिए, त चेव सव्व जाव दाण दाइयाण परिभाइत्ता, जे से हेमताण दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसवहुले तस्स ण पोसवहुलस्स एक्कारसीदिवसेण पुव्वह्णकाल-समयसि विसालाए सिवियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए, त चेव

सव्व, नवर वाणारसिं नगरिं मज्झमज्झेण निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणवे आसमपए उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अमोगवरपायवस्स अहे सीय सु भे य अज्जघोसे य वसिट्ठे बभयारि य। सोमे सिरिहरे चेव वीरभद्दे जसे वि य।१५६।

'पासस्स ण अरहओ पुरिसादाणीयस्स अज्जदिण्णपामोक्खाओ सोलम समणसाहस्सीओ ऊक्कोसिया समणसपया होत्था। पासस्स ण अरहओ पुरिमादाणीयस्स पुप्फचूलापामोक्खाओ अट्ठत्तीस अज्जियासाहस्सीओ ऊक्कोसिया अज्जियासपया होत्था। पासस्स ण अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुव्वयपामोक्खाण समणोवासगाण एगा सयसाहस्सीओ चऊसट्ठि च सहस्सा ऊक्कोसिया समणोवासगसपया होत्था। पासस्स ण अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनदापामोक्खाण समणोवासियाण तिण्णि सयसाहस्सीओ सत्तावीस च सहस्सा ऊक्कोसिया समणोवासियाण सपया होत्था' ॥१५७॥
जे से वासाण पढमे मासे दुच्चे पक्खे सावणसुद्धे, तस्स ण सावणसुद्धस्स अट्ठमीपक्खेण ऊप्पि सम्मेयसेलसिहरंसि अप्पचऊत्तीसइमे मासिएण भत्तेण अपाणएण विसाहाहिं नक्खत्तेण जोगमुवागाएण पुव्वह्लकालसमयम्मि वग्घारियपाणी कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१५९॥

पासस्स ण अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स दुवालस वाससयाइ विइक्कताइ, तेरसमस्स य वारसयस्म अय तीसइमे सवच्छरे काले गच्छई ॥१६०॥

ठावेइ, सीय ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालकार ओमुयति, आभरणमल्लालकार ओमुइत्ता सयमेव पचमुट्ठिय लोय करेइ, लोय करित्ता अट्ठमेण भत्तेण अपाणएण विसाहाहिं नक्खत्तेण जोगमुवागएण एग देवदूसमादाय तिहिं पुरिससएहिं सद्धि मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए ॥१५३॥

पासे ण अरहा पुरिसादाणीए तेसीइ राइदियाइ निच्च वोसट्ठका

चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जति, तजहा-दिव्वा वा माणुस्सा वा तिरिक्खजोणिया वा, अणुलोमा वा पडिलोमा वा, ते ऊप्पन्ने सम्म सहइतितिक्खइ खमइ अहियासेइ ॥१५४॥

तए ण से पासे भगव अणगारे जाए इरियासमिए जाव अप्पाण भावेमाणस्म तेसीइ राइदियाइ विइक्कताइ, चउरासीइमस्स राइदियस्स अतरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाण पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स ण चित्तबहुलस्स चऊत्थीपक्खेण पुव्वह्ण-कालसमयसि धायत्तिपायवस्स अहे छट्ठेण भत्तेण अपाणएण विमाहाहिं नक्खत्तेण जोगमुवागएण झाणतरियाए वट्टमाणस्स अणते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदसणे समुप्पन्ने, जाव जाण-माणे पाममाणे विहरइ ॥१५५॥

पासस्स ण अरहओ पुरिसादाणीयस्य अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा हुत्था ॥१५६॥ —कल्पसूत्र १४८-५६

४२

(अ) समवायाग २२०, २२१

(ब) कल्पमूत्र १४९

(स) आवश्यक निर्युक्ति ३८८

४३ (अ) उत्तरपुराण ४३

(ब) पद्मपुराण

४४ पासणाहचरिउ (वादिराज) ९।९५।५

४५ हयमेणवम्मिलाहिं जादो हि वाणारसीए पासजिणो ।
—तिलोयपण्णत्ती ४।५४८

४६ मुणिसुव्वओ य अरिहा, अरिट्ठनेमी य गोयमगुत्ता। सेसा तित्थयरा खलु कासवगुत्ता मुणेयव्वा —आवश्यक निर्युक्ति ३८१

४७ वाराणस्यामभूत् विश्वसेन काश्यपगोत्रज
—उत्तरपुराण ७३-७५

४८ णाहोग्गवसेसु वि वीरपासो —तिलोयपण्णत्ती ४।५५०

४९ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित ९।३ पृष्ठ ३४८

५० इक्खगुवस सभूय भूवइ भाल तिलय भूओ आरासेणो नाम नंरवई
—सिरिपासनाहचरिय प्र० ३ पृष्ठ १३४

५१ (अ) सप्प सयणे जणणी, त पामइ तमसि तेण पासजिणो ।
—आवश्यक नियुंक्ति १०९८

(ब) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित ९।२।४७१

(स) पासोवसप्पिण सुमिणयम्मि सप्प पलोइत्था
—सिरिपासनाहचरिय ११ प्र ३ पृष्ठ ११०

५२. (अ) तइँ सुखइ पासु यवेवि णाउ
—पासणाहचरिउ ( पद्मकीर्ति ) ८।२३।७०

(ब] पार्श्वाभिधान कृत्वास्य ॰। उत्तरपुराण ७३।९२

५३ (अ) वीर अरिट्ठनेमिं पास मल्लि च वासुपुज्ज च ।
एए मुत्तूण जिणे अवसेसा आसि रायाणो ॥
रायकुलेसुऽवि जाया विसुद्धवसेसु खत्तिअकुलेसु ।
न य इत्थिआभिसेआ कुमारवासमि पव्वइआ ।
( अच्छआ पाठ भी मिलता है )
—आवश्यकनियुंक्ति २२१-२२२

(ब) मल्ली, अरिट्ठनेमी, पासो वीरो य वासुपुज्जो
ए ए कुमारसीहा गेहाओ निग्गया जिणवरिन्दा ।
सेसा वि हु रायाणो पुहई भोत्तूण निक्खन्ता ॥
—पउमचरिय (विमलसूरि) २२ पृ० ९२

(स) वासुपूज्यो महावीरो मल्लि पार्श्वो यदुत्तम ।
कुमारा निर्गता गेहात् पृथिवीपतयोऽपरे ॥
—पद्मपुराण २०।६७

(द) पञ्चाना तु कुमाराणा राज्ञा शेपजिनेशिनाम्
—हरिवश ६०।२१४ (माणिक्यचन्द्र ग्रन्थमाला)

(य) णेमी मल्लीवीरो कुमारकालम्मि वासुपुज्जो य ।
पासो वि गहिदतवा सेसजिणा रज्जचरमम्मि ।
—तिलोयपण्णत्ती ४।६७०

विशेष—आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि उपर्युक्त तीनो दिगम्बर ग्रथो मे कुमार अवस्था का तात्पर्य राजा नही बनना ही सिद्ध होता है क्योकि इन तीनो ग्रन्थो मे अगले चरण मे कहा गया है कि शेष ने राज्य किया। जबकि श्वे० परम्परा ग्रन्थ आवश्यकनिर्युक्ति मे अगली गाथा का पाठ 'इत्यिआभिसेया' माने तो कुमार का अर्थ अविवाहित अधिक सगत लगता है। इस प्रकार मूल ग्रथ उनकी अपनी परम्परागत मान्यताओ से भिन्न बात कहते हैं।

५४ समणस्स ण भगवओ महावीरस्स भज्जा 'जसोया' कोडिण्णागोत्तेण।—आचाराग (मधुकर मुनि) २।१५।७४४

५५ चउपन्नमहापुरिसचरिय २६१

५६ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र ९।३

५७ सिरिपासणाहचरिय ३।१६२-६३

५८ पासणाहचरिउ (पद्मकीर्ति) सन्धि ११-१२

५९ चउपन्नमहापुरिसचरिय २६२

द्रष्टव्य—कमठ सम्बन्धी घटना के साहित्यिक साक्ष्य ८वी-९वी शताब्दी के पूर्व के नही है—जबकि मूर्तिकला मे पार्श्व के उपसर्गों का चित्रण ६ठी शताब्दी से मिलने लगता है—यद्यपि वे नागोद्धार की घटना के प्रबल साक्ष्य नही माने जा सकते हैं।

६० पासणाहचरिउ १०।१३।११०-११२

६१ उत्तरपुराण ७३।९६-११७

६२ (अ) देखें—भगवान् पार्श्व देवेन्द्रमुनि शास्त्री, पृ० ८०-८३।

(ब) नागी नागश्च सम्प्राप्तशमभावौ कुमारत
बभूवतुहीन्द्रश्च तत्पत्नी च पृथुश्रियौ
ततस्त्रिशत्समामानकुमार समये गते॥
—उत्तरपुराण ७३।११८-१९ पृ० ४३६-३७

६३. (अ) धरणस्स ण नागकुमारिंदस्स नागकुमारन्नो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ त जहा—आला, सक्का, सतेरा, सोयामणा इदा घणविज्जुया।—स्थानाग ३५

(ब) ·········त जहा १ इला २ सुक्का, ३ सतारा ४ सोदामिणी ५ इदा ६ घणविज्जुया । —भगवती १०।५

(स) इला ··· एव कमा मतेरा, सोयामणी, इन्दा, घणा, विज्जु या वि सव्वाओ एयाओ धरणस्स अग्गयहिसीओ ।
—ज्ञाता० २।३।१-६

(ज्ञातव्य है कि ज्ञाता मे 'सुक्का' का उल्लेख नही उसके स्थान पर घना-विद्युता को अलग-अलग करके ६ की सख्या पूरी की गई है)

६४ भगवान् पार्श्व—देवेन्द्रमुनि शास्त्री, पृ० ८६

६५ महारायगिहाइसु मुणओ खित्तारिएसु विहरिंसु ।
उसभो नेमी पासो वीरो अ अणारिएसु पि ॥
—आवश्यकनिर्युक्ति २३४

६६ कुरुकौशलकाशी सुह्यावती पुड्र माल्वान् ।
अग-बग कलिंगाख्य पचालमगधाभिधान् ॥
विदर्भ भद्र, शाख्य दर्शर्णोदीन बहुन्जिन ।
विहार महाभूत्या सन्मार्गदेशिनोद्यत ॥
—सकलकीर्ति, पार्श्वनाथचरित्र २३, १८, १९, १५।७६-८५

६७ (अ) समवाओ ८।८, ९।४, १६।४, २३।३-४, २४।१, ३०।६, ३८।१, ७०।२, ९५।३, १०४।४

(ब) कल्पसूत्र, १४९-१५६

(स) आवश्यकनिर्युक्ति २२१,२२२, २५०, २५६, २९०, ३२५, ३८१.

(द) तिलोयपण्णत्ती ४।५४८, ५७६, ६६६

६८ चउपन्नमहापुरिसचरिय ५३ पृ० २४५-२६९

६९ तिलोयपण्णत्ति चउत्थोमहाधियारो

७० (अ) देखें पार्श्वाभ्युदय जिनसेन

(ब) उत्तरपुराण (गुणभद्र) पर्व ७३

७१ -नासाम्बरत्वे न सिताम्बरत्वे, न तर्कवादे न च तत्त्ववादे।
न पक्षसेवाश्रयेन मुक्ति, कषाय मुक्ति किल मुक्तिरेव॥

७२ इसिभासियाइ (ऋषिभाषित)—अध्ययन ३१

७३ उत्तराध्ययन, अध्याय २३

७४ अह पि ण गोयमा! एवमाइक्खामि, भासामि, पण्णवेमि, परू-वेमि—भगवती २।५।११०

७५ राजप्रश्नीय सूत्र १६७-१९०

७६ (अ) सत्रकृताग २।७।८१

(ब) उत्तराध्ययन, अध्ययन २३।

(स) आवश्यकनिर्युक्ति १२४१-१२४३

७७ इसिभासियाइ, अध्ययन ३१

७८ वही

७९ वही

८० सूत्रकृताग २।७।७१-८१

८१ भगवती ९।३२।३७९

८२ इसिभासियाइ, अध्ययन ३१

८३ भगवती १०।९।७६

८४ भगवती २।५।११०

८५ देखें—उत्तराध्ययन २३।३५-७१

८६ वही

८७ उत्तराध्ययन २३।१३, देखें—इसी गाथा की शान्त्याचार्य की टीका

८८ निग्गन्था एक साटका मज्झिमनिकाय महासिहनादसुत्त १।१।२

८९ सव्वे वि एमइसेण निग्गया जिणवरा—समवायाग प्रकीर्णक समवाय २२६।१

९१ जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिते पायचउत्थेहिं तस्स ण णो ए व भवति—चउत्थ वत्थ जाइस्सामि।

अह पुण एव जाणेज्जा उवातिक्कते खलु हेमते, गिम्हे पडिवण्णे अहापरिजुण्णाइ वत्थाइ परिट्ठवेज्जा, अहापरिजुण्णाइ वत्थाइ परिट्ठवेत्ता अदुवा सतरुत्तरे अदुवा ओमचेले, अदुवा एगसाडे,

अदुवा अचेले। लाघविय आगममाणे। तवे से अभिसमण्णगते भवति। जहेत भगवता पवेदित तमेव अभिसमेच्चा, सव्वतो सव्वताए सम्मत्तमेव समभिजाणिया।
—आचाराग १।८।४।२१३-१४

९२ (अ) ऋषिभाषित-अध्याय ३१

(ब) चाउज्जामो य जो धम्मो
जो इमो पचसिक्खिओ। उत्तराध्ययन २३।१२

(स) पचजमा पढमतिमजिणाण सेसाण चत्तारि।
—आवश्यकनिर्युक्ति २३६

९३ एवमेगे उ पासत्था, पन्नवति अणारिया।
इत्थीवसगया बाला, जिणसासणपरम्मुहा॥
जहा गड पिलाग वा, परिपीलेज्ज मुहुत्तग।
एव विन्नवणित्थीसु, दोसो तत्थ कओ सिया।
—सूत्रकृताग १।३।४।९-१०

९४ सूत्रकृताग १।६।२८

९५ अहावरे छट्ठे भते! वए राई भोयणाओ वेरमण— दशवैकालिक ४।१६

९६ (अ) तए ण से उदए पेढालपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पचमहव्वइय सपडिक्कमण धम्म उवसपज्जित्ता ण विहरइ।—सूत्रकृताग २।७।८१

(ब) तए ण से कालसवेसियपुत्ते 'सपडिक्कमण धम्म उवसपज्जित्ताण विहरइ।—व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र १।९।२३

९७ (अ) पढमतिमाण दुविगप्पो। सेसाण सामइओ।
—आवश्यकनिर्युक्ति २३६,
'पढमतिमाण दुविगप्पो'त्ति सामायिकच्छेदोपस्थापनाविकल्प॥—आवश्यकनिर्युक्ति, हरिभद्रीयवृत्ति. २३६

(ब) सामाइयचारित्त छओवट्ठाण च परिहार ।
तह सुहुमसपराय अहखाय पच चरणाइ ॥
दुण्ह पण इअराण तिन्नि उ सामाइयसुहुमऽहक्खाया ।
—२८२-८३ (अभिधान र.जेन्द्र पृ० २२६६

१८ (अ) सपडिक्कमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।
मज्झिमयाण जिणाण कारणजाए पडिक्कमण ॥
जो जाहे आवन्नो, साहू अन्नयरयमि ठाणमि ।
सो ताहे पडिक्कमई, मज्झिमयाण जिणवराण ॥
बावीसं तित्थयरा, सामाइयसजम उवइसति ।
छेओवट्ठावणय पुण, वयन्ति उसभो य वीरो य ॥
—आवश्यकनिर्युक्ति १२४१-१२४३

(ब) चउठाणठिओ कप्पो, छहिं ठाणेहिं अट्ठिओ ।
एसो धूयरय कप्पो, दसट्ठाणपतिट्ठिओ ॥६३५९॥
चउहिं ठिता छहिं अठिता, पढमा बितिया ठिता दसविहम्मि ।
वहमाणा णिव्विसगा, जेहि वह ते उ णिव्विट्ठा ॥६३६०॥
सिज्जायरपिंडे या, चाउज्जामे य पुरिसजेट्ठे य ।
कितिकम्मस्स य करणे, चत्तारि अवट्ठिया कप्पा ॥६३६१॥
आचेलक्कुद्देसिय, सपडिक्कमणे य रायपिंडे य ।
मास पज्जोसवणा, छडप्पेतऽणवट्ठिता कप्पा ॥६३६२॥
दसठाणठितो कप्पो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।
एसो धुतरत कप्पो, दसठाणपतिट्ठितो होति ॥६३६३॥
आचेलक्कुद्देसिय, सिज्जायर रायपिंड कितिकम्मे ।
वत जेट्ठ पडिक्कमणे, मास-पज्जोसवणकप्पे ॥६३६४॥
दुविहो होति अचेलो, सताचेलो असतचेलो य ।
तित्थगर असतचेला, सताचेला भवे सेसा ॥६३६५॥
सीमावेढियपृत्त, णदिउत्तरणम्मि नग्गय वेंति ।
जुण्णेहि णग्गिया मी, तुर सालिय ! देहि मे पोत्ति ॥६३६६॥
—बृहत्कल्पसूत्रभाष्य, षष्ठविभाग भाष्यगाथा ६३५९-६३६६
प्रकाशक श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर सन् १९४२

तुलनीय
अच्चेलक्कुद्देसियसेज्जाहररायपिंड किदियम्म ।
वद जेट्ठ पडिक्कमण मास पज्जो समणकप्पो ॥१८॥
मूलाचार—समयसाराधिकार १८

(स) जुन्नेहिँ खडिएहि य, असव्वतणुपाउतेहि ण य णिच्च ।
सतेहिँ वि णिग्गथा, अचेलगा होति चेलेहिं ॥६३६७॥
एव दुग्गत-पहिता, अचेलगा होति ते भवे वुद्धी ।
ते खलु असततीए, घरेति ण तु घम्मवुद्धीए ॥६३६८॥
आचेलक्को घम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।
मज्झिमगाण जिणाण, होति अचेलो सचेलो वा ॥६३६९॥
वृहत्कल्पसूत्र भाष्य–पष्ठ उद्देश

९९ (अ) तेण कालेण तेण समएण 'पासावच्चिज्जे कालासवेसिय-पुत्ते णामे अणगारे ।—भगवती ११९

(व) तेण कालेण पासावच्चिज्जा थेरा भगवतो ।
—भगवती ५।९

(स) महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा
—आचाराग २।१५।१५

१०० एवमेगे उ पासत्था—सूत्रकृताग १।३।४।९

१०१ वही

१०२ मिथ्यात्वादयो वन्धहेतव पाशा इव पाशास्तेपु तिष्ठतीति पाशस्थ । प्रवचनसारोद्धार गाथा १०४, वृत्ति पत्र २५

१०३ (अ) सदनुष्ठानात् पार्श्वे तिष्ठन्तीति पार्श्वस्था. ।
—सूत्रकृताग, शीलाक टीका १।३।४।९ की टीका

(व) पार्श्वे—तटे ज्ञानादीना यस्तिष्ठति स पार्श्वस्थ ।
—प्रवचनसारोद्धार गाथा १०४, वृत्ति पत्र २५ ।

१०४ चरित्रसार

१०५ पन्थान पश्यन्नपि तत्समीपेऽन्येन कश्चिद् गच्छति, यथासौ मार्गपार्श्वस्थ. एव निरतिचारसयममार्गं जानन्नपि न तत्र

वर्तते, किंतु सयममार्गपार्श्वे तिष्ठति नैकान्तेनासयत, न च निरतिचारसयम सोऽभिधीयते पार्श्वस्थ इति। शय्याधरपिण्ड-मभिहित नित्य च पिण्ड भुड्क्ते पूर्वापरकालयोर्दातृसस्तव करोति, उत्पादनैषणादोषदुष्ट वा भुड्क्ते, नित्यमेकस्या वसतौ-वसति, एकस्मिन्नेव मस्तरे शेते, एकस्मिन्नेव क्षेत्रे वसति। गृहिणा गृहाभ्यन्तरे निषद्या करोति, गृहस्थोपकरणैर्व्यहरति दु प्रतिलेखमप्रतिलेख वा गृह्णाति, सूचीकर्तरिनखच्छेदनदशन-पट्टिकाक्षुरकर्णशोधनाजिनग्राही, सीवनप्रक्षालनावधूननरञ्ज-नादिवहुपरिकर्मव्यापृतश्च वा पार्श्वस्थ। क्षारचूर्ण सौवीरलवण-सर्पिरित्यादिक अनागाढकारणेऽपि गृहीत्वा स्थापयन् पार्श्वस्थ। रात्रौ यथेष्ट शेते, सस्तर च यथाकाम वहुतर करोति। उपकरणवकुशो देहवकुश — दिवसे वा शेते च य पार्श्वस्थ। पदप्रक्षालन म्रक्षण वा यत्कारणमन्तरेण करोति, यश्च गणोप-जीवी तृणपञ्चकसेवापरश्च पार्श्वस्थ। अयमत्र सक्षेप — अयोग्य सुखशीलतया यो निषेवते कारणमन्तरेण च सर्वथा पार्श्वस्थ।—भगवती आराधना गाथा १९४४ की टीका।

१०६ पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्था।
—तत्वार्थसूत्र ९।४८

१०७ एवमेगे उ पासत्था मिच्छादिट्ठी अणारिया।
अज्झोववण्णा कामेहिं पूयणा इव तरुणए।
—सूत्रकृताग १।३।४।१३

१०८ तए ण सा काली अज्जा पासत्था पासत्थविहारी, ओसण्णा ओसण्णविहारी, कुसीला कुसीलविहारी, अहाछदा, अहाछद-विहारी, ससत्ता ससत्तविहारी। —ज्ञाताधर्मकथा २।१।१।३०

१०९ भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था। —आचाराग २।१५।१५

११० उदए पेढालपुत्ते भगवपासावच्चिज्जे।—सूत्रकृताग २।१७

१११ पासावच्चिज्जे गगेए नाम अणगारे।—भगवती ९।३२

११२ पासावच्चिज्जे कालासवेसियपुत्ते नाम अणगारे।
—भगवती १०।९

११३ पासावच्चिज्जा थेरा भगवतो—भगवती ५।९

११४ इस प्रसग मे चार पार्श्वापत्य स्थविरो का उल्लेख है—कालिय-पुत्त, मेहिल, आनन्दरक्षित और काश्यप। —भगवती २।५

११५ भगवती २।५

११६ राजप्रश्नीय

११७ पट्टावली समुच्चय—उपकेशगच्छीय पट्टावली, पृ० १८४

११८ दीघनिकाय—पयामीसुत्त

११९. तत्थ कुमाराए सनिवेसे कूवणओ णाम कुभकारो, तस्स कु भा-रावणे पासावच्चिज्जा मुणिचदा णाम थेरा बहुसुता बहुपरि-वारा, ते तत्थ परिवसति—आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्ध, पृ० २८५, आवश्यकनिर्युक्ति ४७७

१२० पच्छा तवाय णाम गाम ए ति, तत्थ णदिसेणा णाम थेरा बहु-स्सुया बहुपरिवारा, ते तत्थ जिणकप्पस्स पडिकम्म करेंति, पासावच्चिज्जा इमेवि बाहिं पडिम ठिता, गोसालो अतिगतो ते आयरिया तद्दिवस चउक्के पडिम ठायति, पच्छा तहिं आरक्खियपुत्तेण हिडतेण चोरोत्ति भल्लएण आहतो, केवल-णाण—आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्ध, पृ० २९१

१२१ तत्थ य उप्पलो नाम पच्छाकडो परिव्वाओ पासावच्चिज्जो नेमित्तिओ भोमउप्पातसिमिण तलिक्ख-अङ्ग-सरलक्खण-वजण अट्ठ ग-महानिमित्त-जाणओ जणस्स सोऊण चितेति।

—वही पृ० २७३

१२२. (अ) आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्ध, पृ० २९८

(व) श्री पार्श्वशिष्या अष्टागनिमित्त ज्ञान पण्डिता गोशालस्य मिलित षडमी प्रोज्जितव्रता नाम्ना शोण कालिन्दोऽन्य कर्णिकारोऽपुर पुन अच्छिद्रोऽथाग्निवेशामोऽथार्जुन पञ्चमोत्तर। तेऽप्याख्युरष्टाग महानिमित्त तस्य सौहृ-दात्। —त्रिषष्टि १०।४।१३४-३६

१२३. भगवई १५।७७

१२४ भगवई १५।१०१

१२५ तत्थ य सोमाजयतीओ उप्पलस्स भगिणीओ पासावच्चिज्जाओ दो परिव्वाइयाओ ण तरंति पव्वज्ज काऊण ताहे परिव्वाइयत्त करेंति।

—आवश्यकचूर्णि पूर्वार्द्ध पृ० २८६

१२६ तेण कालेण तेण समएण पासावच्चिज्जे गगेए नाम अणगारे जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामते ठिच्चा समण भगव महावीर एव वयासी।—भगवई ९।३२

१२७ वही ९।३२।१३८

१२८ पट्टावली समुच्चय उपकेशगच्छ पट्टावली पृ० १७७-१९८, श्री चारित्र स्मारक ग्रन्थमाला, (गुजरात)

१२९. थेराण थेरभूमिपत्ताण कप्पति दडए वा, भडए वा, छत्तए वा, मत्तए वा, लट्ठिय वा, भिसि वा, चेले वा, चेलचिलिमिलि वा, चम्म वा, चम्मकोस वा, चम्मपलिछएण।

—व्यवहारसूत्र ८।५

130 On this assumption we can account for the division of the Church in Svetambaras and Digambaras There was apparently no sudden rupture but an original diversity ripened into division and in the end brought about the great schism

—The Sacred Books of the East, Vol XLV p XXII

१३१ देखें—(अ) भगवानबुद्ध, जीवन और दर्शन—धर्मानन्द कोसम्बी, लोकभारती प्रकाशन १९८२ पृ० ६२

(ब) मज्झिमनिकाय महासीहनाद सुत्त

१३२ पाइथागोरस की सस्था (Society) मुख्य रूप से किसी दर्शन-विशेष की पीठ (School) नही थी। वास्तव मे वह एक

प्रकार का नैनिक धर्म और धार्मिक सघ (order) था। उनमे दो सिद्धान्न प्रमुख थे। पहला आत्मा के पुनर्जन्म का सिद्धान्त और दूसरा भवचक्र अथवा कर्मवाद का सिद्धात। आत्मा की अमरता मे पाइथेगोरस का अटूट विश्वास था। प्राक्तन कर्मों से यह जीवन बना है और इस जीवन मे कर्म भविष्य के जीवन का निर्माण करेंगे। ससार जन्म-मरण का चक्र है और मानव जीवन की सार्थकता इसी मे है कि वह अपने कर्तव्यो द्वारा इस भव-चक्र से मुक्ति प्राप्त करे।

पाइथेगोरस के नैतिक विचार पर्याप्त कठोर है। उसने अपने सघ के सदस्यो के जीवन मे त्याग, तपस्या और सयम पर विशेष ध्यान दिया। मास खाना बिलकुल ही वर्जित था। यहाँ तक कि मटर, सेम और लोबिया की फलियो के खाने की भी मनाही थी। विरति, सयम, इन्द्रिय-निग्रह और मिताचार उनके जीवन के मुख्य अ ग थे। वे एक विशिष्ट प्रकार का वस्त्र पहनते थे। उन्होने बताया कि शरीर आत्मा के लिए एक बन्दी गृह है और हमे उससे मुक्ति का उपाय ढूँढना चाहिए।—ग्रीक दर्शन का वैज्ञानिक इतिहास (प्रो० जगदीश सहाय) पृ० ५८-५० प्रकाशक किताब मण्डल १९६०

१३३ देखें—पट्टावलीसमुच्चय ( दर्शनविजय ), उपकेशगच्छ पट्टावली पृ० १७७-१९४

# आओ बैठें करें विचार

—डा० महेन्द्र सागर प्रचण्डिया

प्राण तत्त्व जो स्वय पूर्ण है,
उसके बिना जग अपूर्ण है,
प्राण तत्त्व पर्याय प्राप्त कर, कहलाता प्राणी ससार।
आओ बैठे करें विचार॥

सुखी स्वर्ग है, दुखी नारकी,
चिन्ता पशुगति मे सुधार की,
समाधान के लिए मनुज गति, धर्म-ध्यान जिसका आधार।
आओ बैठें करे विचार॥

हम कर्त्ता कर्मों के अपने,
हम ही है भोक्ता पक्ष जितने,
जैसे बोए बीज मिलेगे, वैसे ही पक्ष दो-दो चार।
आओ बैठे करें विचार॥

हम निमित्त को दोषी ठहराते,
उपादान को काम न लाते,
दोनो के सयोग साथ से, चला सदा कार्मिक व्यापार।
आओ बैठे करें विचार॥

श्रावक बनता समता श्रम से,
प्राणी प्रोन्नति पाता क्रम से,
शुद्ध और शुभ उपयोगो के हैं आवश्यक प्रिय सदाचार।
आओ बैठें करें विचार॥

वसु कर्मो का विश्व खेल है,
बाहर-भीतर यहाँ जेल है,
कुशल खिलाडी कर्म काट, करता है अपना भव सुधार।
आओ बैठें करें विचार॥

—